अंक-1 खंड-1

जुलाई-सितम्बर 2023

अनुनाद

हिन्दी साहित्य, समाज और संस्कृति की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

संपादक

शिरीष कुमार मौर्य

मेधा नैलवाल

अनुनाद

हिन्दी साहित्य, समाज और संस्कृति की ऑनलाइन त्रैमासिक पत्रिका

सम्पादक मंडल

शिरीष कुमार मौर्य (मुख्य सम्पादक)
प्रोफेसर, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
shirishkumarmourya@kunainital.ac.in

मेधा नैलवाल
अतिथि व्याख्याता, हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषा विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
medhanailwal@kunainital.ac.in

संजय घिल्डियाल
प्रोफेसर, इतिहास विभाग,
कुमाऊं विश्वविद्यालय, नैनीताल (उत्तराखंड)
पिन -263001
sanjayghildiyal@kunainital.ac.in

राजेन्द्र कैड़ा
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
पिन- 263139 rkaira@uou.ac.in

अनिल कार्की
संविदा व्याख्याता, हिन्दी विभाग, उत्तराखंड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी (उत्तराखंड)
पिन- 263139 anilk@uou.ac.in

अधीर कुमार
प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, ऋषिकेश परिसर, श्रीदेव सुमन विश्वविद्यालय, ऋषिकेश (उत्तराखंड)
पिन – 249201 adheerkumar@sdsuv.co.in

परामर्श मंडल

हरीशचंद्र पांडे (हिन्दी कवि)

लीलाधर मंडलोई (हिन्दी कवि)

सुबोध शुक्ल (हिन्दी आलोचक)

आशीष त्रिपाठी (हिन्दी आलोचक)

संपर्क

पता – वसुंधरा/ तीन, भगोतपुर तड़ियाल
पीरूमदारा, रामनगर, उत्तराखण्ड – 244715 दूरभाष : 9557340738
ई-मेल : medha.nailwal.anunad@gmail.com

पत्रिका में प्रकाशित रचनाओं में विचार लेखक के स्वयं के हैं। संपादक की इनसे सहमति अनिवार्य नहीं है।

अनुनाद के दिसम्बर 2023 में प्रकाश्य अगले अंक के लिए रचनाएँ आमंत्रित हैं। आप कविता, कहानी, आलोचना/समीक्षा, कथेतर गद्य और समाज और संस्कृति जुड़े आलेख हमें भेज सकते हैं।

रचनाएं यूनीकोड फॉन्ट में ही प्रेषित करें।

अनुक्रम

- **कविता**

1. इंडोनेशियाई कवि एगुस सर्जोनो की कविताएँ / चयन और अनुवाद : यादवेन्द्र/ पृ. 3
2. रसूल हम्ज़ातोव की कविताएँ / चयन और अनुवाद : श्रीविलास सिंह / पृ. 5
3. शालिनी सिंह की कविताएँ / पृ. 11
4. डोगरी कवि दर्शन दर्शी की कविताएँ / चयन और अनुवाद : कमल जीत चौधरी / पृ. 17
5. मलेशियाई कवि जुरीनाह हसन की कविताएँ / चयन और अनुवाद : यादवेन्द्र / पृ. 20
6. सीमा सिंह की कविताएँ / पृ. 22
7. ओड़िया कविताएँ - बंशीधर षडांगी और फनी महांती / चयन और अनुवाद : पारमिता षड़ंगी/ पृ. 25
8. पंखुरी सिन्हा की प्रेम कविताएँ / पृ. 28
9. राकेश मिश्र की कविताएँ / पृ. 30
10. दिवा भट्ट की कविताएँ / पृ. 36
11. शिवम तोमर की कविताएँ / पृ. 39

- **कहानी**

12. प्रतिभा गोटीवाले की कहानी : आसमानी शर्ट / पृ. 42
13. अनामिका अनु की दो कहानियाँ : काली कमीज़ और काला कुर्ता / येनपेक कथा : बूढ़ा छातेवाला / पृ. 55

- **आलोचना/समीक्षा**

14. काव्यात्मक आलोचना के बोधात्मक प्रतिमान – प्रचण्ड प्रवीर / पृ. 62
15. वर्तमान समय की विद्रूपताओं और विसंगतियों का रेखांकन - दीक्षा मेहरा/ पृ.72

- **समाज और संस्कृति**

16. जागर – लोक की स्मृतियाँ और स्मृतियों का लोक : अंजलि नैलवाल / पृ. 76

- **कथेतर**

17. हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया : युवा कवि सपना भट्ट से सम्पादक का साक्षात्कार / पृ. 80

उनकी माँग में तुम्हारी भलाई भी शामिल है...- इंडोनेशियाई साहित्यकार एगुस सर्जोनो की कविता

चयन एवं अनुवाद - यादवेंद्र

1962 बांडुंगमें जन्मे एगुस सर्जोनो इंडोनेशिया के प्रमुख कवि, लेख और नाटककार हैं, जिन्होंने इंडोनेशिया के साहित्य का अध्ययन और बाद में अध्यापन किया। उनकी रचनाओं के दुनिया की कई भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हैं। कविता, कथा, नाटक, आलोचना इत्यादि की उनकी लगभग एक दर्जन किताबें प्रकाशित हैं। अनेक प्रतिष्ठित लिटरेरी फेस्टिवल में उन्हें आमंत्रित किया गया।

बरसात के आँसू

"मुझसे किसी पर निशाना मत लगाओ" -
एक राइफल गिड़गिड़ाता है
डर से काँपता है।

"चुप बे साले",
हाथ चीखता हुआ धमकी देता है-
"मुझे उन बच्चों को गोली से उड़ाना ही है।"

"पर देखो तो, वे अभी कितनी कम उम्र के हैं
उनके चेहरों पर कैसी प्यारी किशोर मुस्कान है
और ऐसा भला वे माँग भी क्या रहे हैं?
उनकी माँग में तुम्हारी भलाई भी शामिल है...
तुम ही तो जब देखो तब अपनी मामूली सी पगार को लेकर
हुकूमत को गालियाँ दिया करते थे
तुम्हारे पास बेहतर जीवन का कोई और मौका भी नहीं
तुम्हीं तो झींक रहे थे कि मुट्ठी भर भात के लिए
कभी यहाँ कभी वहाँ कैसे कैसे पापड़ बेलने पड़ते हैं।"

"मुझसे किसी पर निशाना मत लगाओ"-
राइफल फिर रोता है घिघियाता है।

"अबे अपना मुँह बंद रख",
हाथ उसे घुड़क देता है:
"तुझे सियासत क्या मालूम

यह एक सियासी मसला है
इसके हल के लिए एक दो लाशें गिरानी तो पड़ेंगी ही।"

"पर मेरे भाई
यह सवाल गिनती का नहीं है
या एक या दो जानों का भी नहीं
बल्कि किसी माँ के बेटा गँवा देने और उसके मातम का है
किसी की जान ले लेने का सवाल है
किसी के सपनों को बीच में ही चकनाचूर कर देने का है
उनके बुनियादी अधिकारों का..."

"बहुत हो गया, अब चोप्प
तेरी औकात ही क्या है साले हथियार?
तू तो एक औजार है, बस
तूने हिम्मत कैसे की बहस लड़ाने की?
बहस तो संसद में राजनेता लड़ाते हैं।"

"पर इन राजनेताओं को अपने सिवा किस की पड़ी है?",
राइफल ने जवाब दिया:
"वे भला कब तुम्हारे बारे में सोचने लगे?
या किसी और के बारे में भी?
गरीब गुरबा और दबे कुचले लोगों के बारे में
उन्हें सोचने की क्या पड़ी है?
उनके दिमाग में हर समय बस उनके स्वार्थ के जोड़ तोड़ होते हैं
इसके सिवा कुछ नहीं"

बैंग.. बैंग.. बैंग.. बैंग..

"काम तमाम हो गया", हाथ बड़बड़ाया।

"यह तो पाप है", राइफल कलपती हुई आवाज में चीखा।

"मुझे मालूम नहीं क्या हुआ", हाथ फुसफुसाया...
"मैं सच में नहीं जानता। बस यह जानता हूँ कि मैं बहुत थक गया हूँ
और अपने घर लौटना चाहता हूँ ...
वहाँ पहुँच कर आराम करना चाहता हूँ ।
उम्मीद लगाए बैठा हूँ कि मेरी बीवी और बच्चे घर पर होंगे ...
और सुरक्षित होंगे।"

अगले ही पल राइफल खुद को बारिश में बदल लेता है।
तब से लगातार उसके आँसू झर झर झर गिर रहे हैं
अंतहीन।
***

तुम में मैं पाता हूँ दुःख और आनंद दोनों ही/रूसी कवि रसूल हम्ज़ातोव की दस कविताएं

चयन एवं अनुवाद - श्रीविलास सिंह

रसूल हम्ज़ातोव का जन्म 1923 में रूस के दागिस्तान इलाके में हुआ था। उनकी शिक्षा दीक्षा मास्को में हुई। उन्होंने साहित्य लेखन की शुरुआत रुसी भाषा के ग्रंथों का अपनी स्थानीय भाषा अवार में अनुवाद से किया। उनकी तीस से अधिक कविता की पुस्तकों के रुसी और अन्य भाषाओं में अनुवाद हुए हैं। उन्हें 1963 में लेनिन पुरस्कार दिया गया। उनकी कविता में एक स्वाभाविक प्रतिभा के दर्शन होते हैं जिसमें परंपरा और आधुनिकता का बेहतरीन मिश्रण है। उन्हें दागिस्तान की जनता का कवि कहा जाता है। उनकी मृत्यु 2003 में हुई।

सौ स्त्रियां जिन्हें मैं प्रेम करता हूँ

सौ स्त्रियां जिन्हें मैं प्रेम करता हूँ,
मैं देखा करता हूँ उन सभी को।
सोते - जागते, बेहोशी में - ऊँची उड़ान में
किन्तु नहीं कर सकता उन्हें बदनाम।
एक लड़की जिसे भूल नहीं सकता मैं कभी भी
जिसने जगाया था आनंद पहली बार मेरे हृदय में
जब जाते हुए जलधारा की ओर, वह मिली थी
एक नंगे पाँव देहाती लड़के से।
नन्हीं लड़की लगती थी कहीं दूर की
जो न थी बड़ी अपने पानी के बर्तन से।
शीतल था जल जिसे लेने को
जलधारा से वह झुकी थी।
शीतल ? नहीं ! वहाँ खड़े हुए महसूस किया था मैंने
उसने दग्ध कर दी थी मेरी देह, और डंक सी मारी थी।
उसकी दृष्टि कितनी जिज्ञासु और बनावट से मुक्त,
सम्मोहित करती है मुझे आज दिन तक।

कालांतर में, भटकते हुए यूँ ही
फाख्ता से धूसर रंग वाले कैस्पियन सागर के तट पर
मैंने प्यार किया एक लड़की से, पर था बहुत शर्मीला
दे पाने को दस्तक उसके दरवाजे पर।
तो बस भटकता रहता था उसके घर के इधर उधर,
एक प्रेमी पागल सा,
चढ़ जाता हुआ जैतून के वृक्ष पर देखने को

परदे पर उसकी छाया :
वह रहती थी दूसरी मंजिल पर.....
और अब भी मैं प्रेम करता हूँ उस युवा लड़की को।

और थी एक और युवा लड़की, जो
यात्रा कर रही थी मास्को की, रेलगाड़ी से
इस युवा लड़की को भी पुनः देखना
अच्छा लगेगा मुझे
बुकिंग क्लर्क, मैं हूँ तुम्हारा शुक्रगुजार
कि तुमने उसे सीट दी थी मेरी बगल में
जिससे हमने देखे दृश्य
डिब्बे की खिड़की जितने विस्तृत।
और अपने सारे जीवन, उस लड़की के संग
मैं ख़ुशी से यात्रा करता रहूँगा इस दुनिया की।

एक नाराज लड़की को मैं प्रेम करता हूँ अब भी
कोई लाभ नहीं होगा कहने का उसके बारे में,
जिसने, गुस्से से पागल हो, कर डाली थी
टुकड़े टुकड़े मेरी पाण्डुलिपि।

मैं प्रेम करता हूँ एक और लड़की को अब भी
ख़ुशी से टिमटिमाती आँखों वाली
जिसने सैकड़ों बार करके तारीफ मेरी कविताओं की
चढ़ा दिया उन्हें आसमान पर।
एक द्वेष से भरी लड़की को मैं प्रेम करता हूँ,
और एक सीधी सादी लड़की को भी,
प्रेम करता हूँ एक पाखंडी लड़की को भी,
और उसे भी जो बुरा मान जाती है जरा सी बात का,
और उसे भी जिसे लगता है यह सब बोरियत भरा,
एक लड़की को जो है बहुत विनम्र,
एक मस्त लड़की को भी मैं प्रेम करता हूँ
और उस अग्नि शमन केंद्र को भी।
हर कस्बे और गाँव में है एक लड़की
जिसे मैं करता हूँ प्रेम,
और दर्जनों महिला छात्राओं को
जो बना देती हैं मेरी अनुभूतियों को रोमांचकारी।
मैं पुकारता हूँ उन सब को 'मेरी प्रिय', 'मेरी फाख्ता'
निडर और उत्साही उन्माद में --
हैं एक सौ लड़कियां जिन्हें मैं करता हूँ प्रेम
एक जैसे जूनून से।

तुम क्यों घूर रही हो मुझे ऐसे
जैसे कोई घूरता है अपने दुश्मन को ?
"तो फिर मैं हूँ उन एक सौ में से एक ?
मुझे बताने का शुक्रिया।"

नहीं नहीं, ठहरो ! सौ, क्या तुम नहीं देख रही
वे सब हैं तुम में ही प्रतिबिंबित।
वे एक सौ लड़कियां तुम्हीं हो मेरे लिए
और मैं हूँ केवल तुम्हारा।
उस समय जब मैं भटक रहा था
एक देहाती लड़का नंगे पाँव,

यह तुम्हीं थी जिसे मैं मिला था जलधारा के समीप
जिसने जगाया था मेरे हृदय में आनंद।

और सागर किनारे के उस शहर में
जहाँ बहा करती थी नमक भरी हवाएँ,
तुम निश्चय ही स्मरण करोगी मुझे,
वह युवा जो पीछा करता था तुम्हारा।
तुम निश्चय ही याद करोगी
भागती हुई ट्रेन के पहियों की आवाज, जो जा रही थी मास्को ?
तुम हो एक में ही सौ लड़कियां,
और वे सभी हैं आलिंगनबद्ध।
तुम में मैं पाता हूँ दु:ख और आनंद दोनों ही,
ठिठुरता मौसम और बसंत की गरिमा,
कभी कभी तुम होती हो निस्पृह
और क्रूर भी, मैं स्वीकार करता हूँ,
और अन्य किसी समय - आज्ञाकारी
और हृदय से सज्जन।
जहाँ जहाँ तुमने की कामना उड़ने की
मैंने अनुगमन किया तुम्हारा हर कदम।
जिस किसी चीज की की तुमने कल्पना,
मैंने अर्जित की तुम्हारे लिए।
हमने देखीं मौन पहाड़ियाँ,
जहाँ बादल आलिंगन करते हैं झाड़ियों का,
और तमाम कौशल से आपूरित शहरों को
गए हम साथ साथ।
हैं सौ लड़कियां जिन्हें मैं प्रेम करता हूँ,
सभी को समान आवेग के साथ.....
यह तुम हो जिसे मैं पुकारता हूँ 'मेरी प्रिय', 'मेरी फाख्ता'
निडर और उत्साहपूर्ण पागलपन में।

सच है, मैं प्रेम करता हूँ सौ लड़कियों को,
किन्तु उनमें से हर एक तुम ही हो !
(पीटर टेम्पेस्ट के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

सुबह और शाम, अंधकार और प्रकाश

सुबह और शाम, अंधकार और प्रकाश -
काले मछुआरे और गोरे मछुआरे।
दुनिया है एक समुद्र की मानिंद; मछलियों की भांति हैं हम,
उन मछलियों की भांति जो तैरती हैं सागर की गहराइयों में।

दुनिया है समुद्र की भांति जहाँ मछुआरे हैं प्रतीक्षारत,
तैयार करते अपने जाल, अपने काँटे और अपना चारा।
ओ समय, फिर कितने शीघ्र तुम ले कर आओगे मुझे फांसने
रात्रि के जाल में अथवा दिन के चारा लगे काँटे में।
(लुइ ज़ेलिकॉफ के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

दहलीज़ पर बारिश

होती है दहलीज़ पर बरसात - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा,
चोटियों पर गिरती है बर्फ - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा।
भोर का निरभ्र आकाश - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा,
गर्मियों के अनाज के खेत - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा।
अबाबीलें गोता लगाती हैं, उड़ान भरतीं लम्बवत - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा,
इकट्ठे होते और अलग होते - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा।
पत्तियां जो हिलती हैं और झूमती हैं हवा से,
पत्तियां जो चमकती हैं ओस की बूंदों से
नहीं देती मुझे कोई राहत - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा।
निश्चय ही तुम हो उन सब से बेहतर लड़की जिन्हें मैं जानता था कभी
तभी तो दिन-रात - चकित, मैं स्वप्न देखता हूँ तुम्हारा।
(पीटर टेम्पेस्ट के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

ओ समय, तुम पीछा कर रहे मेरा आतंक के सिपाहियों संग

ओ समय, तुम पीछा कर रहे मेरा आतंक के सिपाहियों संग
पीड़ादायक खुलासों, अनादर, बेचैनी संग;
आज तुम आरोपित कर रहे मुझे कल की गलतियों के लिए
और ध्वस्त कर दे रहे मेरे भ्रम रेत के किलों की भांति।
कौन जानता था कि इतनी आसानी से ध्वस्त हो जाएँगे पुराने सच ?
फिर तुम क्यों हँसते हो मुझ पर, इतनी निर्दयता क्यों ?
मैंने उन्हीं बातों में गलतियाँ की जहाँ गलत थे तुम भी,
दोहराते हुए तुम्हारे शब्द अपनी उन्मत्त अंधता में !
(लुइ ज़ेलिकॉफ के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

उनमें से भी कुछ जिनके पास हैं अधिकतम.

उनमें से भी कुछ जिनके पास हैं अधिकतम
बस पाँच मिनट का संक्षिप्त समय शेष जीने को - और अधिक नहीं ,
श्रमरत हैं बिना एक क्षण के विश्राम के
मानों उनके पास अभी शेष हों सैकड़ों वर्ष जीने के लिए,

जब बर्फीली चोटियाँ, समवयस्क सृष्टि के सृजन की ,
मौन कठोरता से निहारती छुद्र मानव को,
खड़ी हैं जमी हुई स्थिर शोकपूर्ण अपेक्षा में

जैसे बस पाँच और मिनट हो शेष उनके जीवन के।
(लुइ ज़ेलिकॉफ के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

मेरा बड़ा भाई बारह साल पहले मर गया..

मेरा बड़ा भाई बारह साल पहले मर गया
स्टालिनग्राद के युद्ध के मैदान में।

किन्तु मेरी वृद्ध माँ अब भी सहेजे है अपना शोक
और घर में फिरती है विलाप के कपड़ों में।

मेरे लिए है पीड़ा और कड़वाहट
यह जानने में कि अब मैं हूँ अब उससे अधिक उम्र का।
(पीटर टेम्पेस्ट के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

मित्रता

तुम जी चुके हो लम्बा जीवन,
अब भी संतुष्ट
बचाने को तुम्हें जीवन के झंझावातों से
तुम नाम नहीं ले सकते एक भी मित्र का
जिसके लिए गर्माहट हो तुम्हारे एकाकी हृदय में।

जब गुजर चुके होंगे वर्ष और तुम हो गए होगे वृद्ध
लोग मुड़ेंगे और कहेंगे :
“यहाँ रहता था एक व्यक्ति, एक शताब्दी पुराना, बेचारा
जो कभी नहीं जिया एक दिन के लिए भी।”
(पीटर टेम्पेस्ट के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

बंद करो डींगें मारना समय....

बंद करो डींगें मारना, समय कि मनुष्य और कुछ नहीं बस हैं तुम्हारी परछाइयां,
कि उनका समस्त वैभव प्रतिबिंबित करता है तुम्हारे वैभव को।
“ये लोग जो उधार देते हैं अपना यश अपने युगों को,
ये मनुष्य जगमग कर देते हैं समय को अपनी प्रसिद्धि से।
आभारी रहो कवि के, विचारक़ों के, नायकों के
जो डालते हैं हम पर आत्मा और मस्तिष्क का प्रकाश।
किसी युग की सर्वकालिक प्रतिभा
प्रस्फुटित होती है मानवता की मशालों से।
(लुइ ज़ेलिकॉफ के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

हैं तीन गीत

हैं तीन गीत जो भर देते हैं रोमांच से मनुष्य का वक्ष

तीन गीत आप्लावित मनुष्य के शोक और आनंद से।
उनमें से एक है औरों से अधिक ख़ुशियाँ लिए हुए-
गीत जो गाती है माँ पालने के पास बैठी।

दूसरा भी गाया जाता है माँ द्वारा ही -
दुलारते शीतल गालों को विलाप करती उँगलियों से,
वह गाती है इसे पुत्र की कब्र के पास।
तीसरा गीत गाया जाता है अन्य तमाम गायकों द्वारा।
(लुइ ज़ेलिकॉफ के अंग्रेजी अनुवाद से)
***

मैं स्वीकार करता हूँ: मैं सोचता हूँ कभी कभी

मैं स्वीकार करता हूँ : मैं सोचता हूँ कभी कभी,
जैसे कि पुनर्जीवित हो गए हम तुम्हारे साथ
प्राचीन कहानियों से, जिनमें नायक
दंडित किए जाते रहे हैं प्रेम में मर जाने को।

प्रेम कसा हुआ अपने जाल में
जलता है प्रेम करने वालों की अग्नि से
प्रिय हंस रहता नहीं जीवित अधिक समय तक
मात्र घृणित कौए ही जीते हैं तीन शताब्दियों तक।
वृद्ध होना नहीं है नियति में हंस की,
किंतु वह प्रेम में जीता है अपना संक्षिप्त जीवन
और विलाप करता है हंस गीत में
वह है कुछ और प्रसन्न कि कौए हैं अब भी दूर।

दी गयी हैं कम से कम तीन शताब्दियाँ कौवों को
जीने को इस दुनिया में लुत्फ़ लेते हुए शवों का।
(यूरी स्टोरोस्टिन के अनुवाद से)
***

उन्होंने ही किया सर्वाधिक दोहन भरोसे का, जिनकी शिराओं में सभ्यताओं की रसोई का नमक घुला था

शालिनी सिंह की कविताएं

शालिनी सिंह की कविताएं 90 के दशक से साहित्य में उद्भूत स्त्री-अस्मिता की ओर इशारा करती हैं, किन्तु ये अपने कथ्य और कहन में बिल्कुल नए कलेवर की कविताएं हैं। ये कविताएं हर उस स्त्री के मन की बात को कहती हैं, जिन्होंने कभी न कभी, कहीं न कहीं इस धोखे, आडंबर, छल-छद्म और पीड़ा को महसूस किया है। लोक-भाषा के शब्दों का प्रयोग संवेदनाओं को और भी गहराता जाता है।

नवरातों में औरत

अप्रेम के सूखते जल में
जब डूबना तय था
उन्होंने प्रार्थनाओं की पवित्र उंगलियों को थाम लिया
प्रेमी सदा से संदेहास्पद रहे
उन पर भरोसा करतीं तो बचना सम्भव न था

मन की टूटन में देह के दुखते पोर
अनदेखे रह जाते हैं
मन की कथनी कौन सुने भला
देवी के सामने अचरा पसार
मन की कह देने का आसरा असरकारक था
जहाँ कम से कम सुने जाने की संभावना पूरी रही
नवरातों के दिनों में उपवास से भूखी वे औरतें
देवी गीतों को पूरे जांगड से गाते हुए
एक अलग लोक रच लेती
पचरा गाते-गाते बेसुध हो जाती
ढोलक की ताल के साथ
झूमते हुए गिर-गिर पड़तीं

देवी के सामने पीड़ा के बन्द में बिंधे
गीतों को गाते हुए
मन की सारी कथा कह देतीं
मन पर पड़ा, मन भर बोझ
इन गीतों के कंधों पर धरकर
सुस्ता लेती कुछ समय
केश के बंद खुल जाते

वह किसी जोगन सी गीतों में लीन हो जाती
उसके गीतों और हृदय की पीर एक..
आत्मा का परमात्मा में मिलन इसे ही बताया होगा
कबीर ने

वह कुछ पलों के लिये
मानो देवी सी नज़र आने लगती
जयघोष होने लगता
कि देवी उतर आई हैं

जो औरतें छटाँक भर
प्रेम न उड़ेलती उन पर कभी
वे पाँवों में लोटने लगतीं
मान मनौती करने लगतीं
जब तक देवी वापस न लौट जातीं

जब तक वह एक सामान्य औरत रही
नेह के कानों से किसी ने नहीं सुना उन्हें
पर देवी का रूप चढ़ते ही
चारों ओर से नेह, मेह बन झरने लगा

देवी का विदा होना उनके जीवन में
आये सुखों का लौट जाना है
उनकी सतरँगी दुनिया का फिर रंगहीन हो जाना है

वह फिर अगले नवरातों
की प्रतीक्षा में हैं
उसकी देह में फिर तितलियाँ उमड़ रही हैं
अब वह ईश्वर की नहीं प्रेम की तलबगार है
***

प्रेमिकाएं

हमारी स्मृतियों मे जितनी भी
प्रेम कहानियां विचरती हैं
जाने क्यों प्रेम में बिसूरती हुई
स्त्रियां ही अधिक नज़र आती हैं

प्रेमियों संग ब्याहने के बाद भी
और प्रेमियों से बिछोह के बाद भी
स्त्रियों के जीवन में प्रेम की हर तान को उस्तादों ने इतना बेसुरा मान लिया
कि चौखट भीतर भी उन्हे प्रेम की हिस्सेदारी से लगभग बेदख़ल किया जाता रहा
और वे तलाशती रहीं
एक कंधा, एक मन, एक स्पर्श
जहाँ वे सुबह की दूब से भीगे मन को सहला सकें
उपेक्षाओं की मार से कलपती लड़कियाँ
सपनों में बसे नायकों से सपनों में ही मन जोड़ती रहीं
गीतों में उन्हें सदाएं देतीं
स्वप्नों में उन्हें बार बार बुलातीं

और तभी तुम मौसम के सबसे चमकते दिनों में
प्रेमी का रूप धर कर मदमस्त चाल से आये
और भर लिया अंकवार उन्हें
अपने प्रेम का दाँव दिखाकर
तुम तो ठहरे सभ्यता के पुराने धुरंधर

प्रेम की गोटी फेंकने में माहिर
तुम्हें सीखने की ज़रूरत नहीं
तुम्हारी देह अभ्यस्त है
प्रेम के दांव-पेंच और झांसों की गमक से

लड़कियाँ बाहें फैलाकर तुम्हारे हौसले को बल देती रहीं
उनकी समझ के दायरे से बाहर था
कि प्रेम छल के घोड़े पर सवार होकर भी आता है
प्रेम करता देखकर भृकुटि तानने वाली आँखों ने लड़कियों को फिर फिर देखा
पर छल के खारे समंदर से सकुशल बाहर निकाल कर लाने की जुगत सिखाने की चेष्टा नहीं की

उनके आसपास अंधेरे की ऐसी कालकोठरी थी
कि प्रेम से प्रेम को बिसरा कर
जीवन से दो चार होने की पड़ताल
सिखाती धूप भी उन तक न पहुँच सकी

लिखे गए तमाम ग्रन्थों में भी
प्रेम की सुपठित व्याख्या तुमने ऐसी लिपि में लिखी कि जिसे उन जैसी दोयम दर्जे की स्त्रियाँ पढ़ नहीं पाईं

जब कि लिखे जाने चाहिए थे
बहुत से ऐसे आख्यान
जहाँ पहले पाठ में ही लिखी होतीं
कुछ सूक्तियाँ--

सावधान प्रेम की यात्रा शुरू करने से पहले
लड़कियां अपनी देह उतार कर यात्रा में शामिल हों
प्रिय के सुख के लिये
सत्य को असत्य से ढाँप कर जाते समय एक बार
पुनः स्वयं को जांच लें

दुनिया की तमाम प्रेमिकाएं जब इन आख्यानों को पढ़ें
तो लगा दें मोहर अपने समर्थन की और करवा लें समय की ज़मीन में अपने इस एलान की रजिस्ट्री
कि प्रेमियों अब तुमसे हमारा निबाह तभी होगा
जब तुम प्रेम को
संवेदना की स्याही से
लिखना सीख जाओगे

भले समय पर उनकी अर्ज़ी अस्वीकृत कर दी जाए
पर वे मौसमों के हिसाब से प्रेम के थान पर मजबूती से अपने पाँव जमाये रखना सीख जाएंगी

कि फिर उसी दिशा में नहीं चलेगा पंडितों के दिशाशूल का चातुर्य
वहीं उपजेगा प्रेम और जीवन
हाथ थामे
समानांतर चलते हुए
और फिर तिलमिला कर
लिखेगा फ़ैसला कोई न्यायाधीश

तोड़ देगा कलम की निब
और लगा देगा मुहर तुम्हारे प्रेम के हक़ में
***

विदा की बेला

विदा की बेला में एक दूसरे को देर तक देखते रहे
धरती पर जैसे मेह उतर आया
वैसे आँखों में उतर आया मोह
कि बारिशों का मौसम
मन के आवेग के अबाध बह
जाने के लिये होता है

उन्हें इस सदी के सबसे हारे हुए प्रेमियों में अपना नाम दर्ज़ नहीं कराना है
कि वे प्रेम की नदी में
आत्माओं की कश्ती चलाकर आये हैं

जब कि प्रेम करना अभी भी एक वर्जना पर कुठाराघात करना है
वे क्षुद्र मानसिकताओं के दौर में प्रेम को बचा लेने की
उम्मीद के प्रेमी हैं
प्रेम में प्रेम को बचा लेने की दुनिया के साझीदार

कि ये बारिशें भले उनके प्रेम के हिस्से न आ पाई हों
उनके मन के एक हिस्से में बनी रहेगी बारिशों की मनचीती प्रतीक्षा
कि टूटते मन को बचा लेगा स्मृतियों का मीठा आह्लाद
भींच कर गले लगा लेगा कोई स्पर्श
तो ताप कम हो जाएगा प्रतीक्षाओं का

उन्हें ईश्वर ने प्रेम के अभेद्य किले में
घुसकर सुरक्षित साथ बाहर निकलने की कला में पारंगत करके भेजा है
समय पर मौसमों की चाह से वे भले चूक जाएं

पर प्रेम में एक दूसरे के प्रति समर्पण बचा लेगा उनके प्रेम को
कि वे प्रेम से रिक्त होती धरती पर
प्रेम के उपजाऊ बीज रोपने आये हैं
***

भरोसा

उन्होंने ही किया सर्वाधिक दोहन भरोसे का
जिनकी शिराओं में सभ्यताओं की रसोई का नमक घुला था

पुरखों की कही ये सूक्ति स्मरण करती हूँ बार बार
पर उतार नहीं पाती इसका अंश भर भी जीवन में
उम्र के इस पड़ाव पर जब हाथ खाली हैं
और मन भरा तब सोंचती हूँ कि
अपने समय का कितना हिस्सा अनगिन बार

उन हित साधकों के लिये रसोई बनाने में गुज़ार दिया
जो केवल अपने हित संधान के लिये आये थे

जिनके चेहरे पर उमग आई
विपन्नता
को ठौर देकर
उलझने अपने लिये ही बड़ाईं
पर आश्वस्त रहा मन का हर कोना हमेशा
लकदक

भरोसे के जल से
सींचती रही हित साधकों के हित
मन के भीतर की छठी इन्द्रिय भी
ऐसे अवसरों पर सदा सुप्त रही
जो सूंघ सकती हित साधने आये मीठी मुस्कान धारकों को
हित साधकों के पृष्ठ में छिपी मंशा को
भाँपने का चातुर्य हर किसी में नहीं होता

स्वार्थ साधते लोग अपनी नम बोली
मीठी मुस्कान से जमाते रहे पाँव अपने
उन्हें खड़ा करने की जद्दोजहद में निष्ठा के साथ
खड़ी रही
और वो स्वावलंबी हो
मेरे ही पाँव के नीचे से जड़े काटने लगे

ईश्वर के दिये इतने समय में से
उम्र का एक मनचीता हिस्सा चला गया इन हितसाधकों के हिस्से

जिन पलों में हित साधकों के हित साधने का जरिया बनी रही
ठीक उन्हीं पलों में कर सकती थी सृजन
मन के भीतर और बाहर के आह्लाद से
या
बेफ़िक्री की एक लंबी नींद
को बुला सकती थी आँखों में
***

बीतना

जीवन के समूचे परिदृश्य में
न जाने कौन बहरूपिया
आता है
चहल कदमी करता है

कंधों पर चुपके से थोड़े से दुख और डाल जाता है
कुछ सुख आप चले जाते हैं उसके साथ

तैरना नहीं आता
सुख की कामना करते हुए
दुख की नदी को हाथ पाँव मारते हुए पार तो कर लेती हूं
पर देह और मन जगह जगह से छिल जाता है

न याद करने वाली स्मृतियों की बाड़ इतनी गझिन है
कि सुख के बीते पलों के प्रवेश के लिये राह ही नहीं बचती

कह देने से मन हलका नहीं होता
बल्कि और भर जाता है
आंसुओं के जमे हिमखंड भरभराकर फूट पड़ते हैं
मन की मुंडेर पर एक पाँव से देर तक टिका नहीं रहा जा सकता

दुख की तीखी धूप में कोस कोस भर पैदल चलते हुए सुख की छाँव की आस पर बीत रहा है जीवन

धीरे धीरे बीत रही हूं मैं भी समय की धार को काटते हुए
***

हम बंड थे किसी हांडी में पके ही नहीं- डोगरी कवि दर्शन दर्शी की कविताएं

चयन एवं अनुवाद - कमल जीत चौधरी

दर्शन दर्शी डोगरी के वरिष्ठ कवि लेखक और स्तम्भकार हैं। इनका वास्तविक नाम दर्शन कुमार वैद है। इनका जन्म बिलावर (कठुआ, जम्मू-कश्मीर) के एक ऐतिहासिक गाँव भड्डू में 1949 ई. में हुआ। अध्यापन और जम्मू-कश्मीर प्रशासनिक सेवा में रहकर सेवानिवृत्त हुए, दर्शी मूलतः रोमानी प्रवृत्ति के कवि हैं। इनके लेखन में व्यष्टि और स्वीकारोक्ति देखी जा सकती है। डोगरी में इनके दो कविता संग्रह और एक उपन्यास प्रकाशित हैं। 'कोरे काकल कोरी तलियां' नामक कविता संग्रह पर इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार (2006 में) प्राप्त हुआ। इनका उपन्यास; 'गास ओपरा धरत बग्गानी' हिन्दी में भी अनूदित व प्रकाशित है। इसके अलावा अंग्रेज़ी में भी इनकी तीन किताबें हैं। दर्शन दर्शी साहित्य अकादमी के डोगरी सलाहकार बोर्ड के संयोजक भी रहे है।

स्वीकारोक्ति

कटोरी में समुद्र
अंजलि में पृथ्वी सजाकर
मैं बहुत खुश था
अपने आप को एक मीर समझता था।

एक दिन गली में नज़र ओलार गयी
देखा
कि
पड़ोसी ने समुद्र को
त्राम्बड़ी* में डाला हुआ है
और पृथ्वी को अपने बहुत बड़े आँगन में
सजाकर रखा है...
उस दिन से एक चुभन से मर रहा हूँ
अब न खुश हूँ
न मीर हूँ
बस दिन रात
पड़ोसी के आँगन से बड़ा आँगन
और उसकी त्राम्बड़ी से बड़ी त्राम्बड़ी ढूँढ़ रहा हूँ।

***

*** त्राम्बड़ी- आटा गूँथने का विशेष बर्तन/परात**

डाकिया

शुक्ल पक्ष के चाँद ने
कृष्ण पक्ष में मेरे पास आकर कहा-
मैंने उस स्त्री को विवस्त्र नहाते देखा था
उसकी जाँघों पर

कुछ लिखा था
उस इबारत पर
तुम्हारे नाम का पुख़्ता भ्रम हुआ है
...
यह सुनना था
कि मैं अपने पुष्ट पट्टों* को गुदवाकर
उसके नाम के भाव सजाकर
सोच के खेतों में
नई इच्छाएँ उगाकर
शुक्ल पक्ष के चाँद का इंतज़ार कर रहा हूँ
ताकि मैं भी अनलंकृत होकर नहाऊँ
और चाँद मेरा
डाकिया बनकर
मेरे पट्टों पर लिखी
कैफ़ियत की चिट्ठी उसे दे आए।
***

*** पट्ट- जांघ**

रास्ता

तोपों के ऊपर टँगा
सेतु-सा इंद्रधनुष
अम्बर को बाहों में भरने के लिए
उकसाता है
पर आकाश चढ़ने की नसैनी नहीं बनता

खुशबू ,
अनेक पते थमाती है
पर पतों की पगडण्डी नहीं बनती
लोक चर्चा,
हम दोनों के नाम से गाँठा हुआ
एक हिचकोला है
जो हमें कभी मिलवा नहीं सका

इंद्रधनुष, खुशबू और लोकचर्चा
उघार तो सकते हैं;
पर रास्ता नहीं बन सकते।
***

लकीर (कवितांश)

दो बिंदुओं को जोड़कर खींची जाए
तो ज्यामिति हुई
ज़रीब रखकर खेतों में खींची जाए
तो बंटवारा हुआ
धरती की छाती पर रखकर खींची जाए
तो दो देशों के बीच सीमारेखा बन जाती है
जो उत्तर-पुस्तिका पर खींच दी जाए
तो काटा मान लिया जाता है...
***

सक्खने*

सिर थे
पत्थर थे
टक्करें थीं

घाव थे लहू था पीड़ा थी

हाथ थे
खार थे
चुभन थी

ठोकर थी पैर थे चीख थी

पत्ते थे
प्यार था
भूलें थीं

स्मृतियाँ थीं दोस्त थे आग थी

मौसम थे
ख्याल था
तस्वीरें थीं

रेखाशास्त्र था हथेली थी लकीरें थीं

दिन थे
तारीखें थीं

आँख थी आस थी प्रतीक्षा थी

कंधों पर ओसियां** थीं
लकीरें थीं
टूटे दिल की चीत्कार थी

सूर्ख फूल बहार हमने जानी ही नहीं
करते बाड़ कैसे पार; हुन्नर ही नहीं
दैहिक प्रेम बाढ़ हमने जानी नहीं
मांसलता हमने जानी नहीं

हम बंड*** थे
किसी हांडी में पके ही नहीं।
सक्खने थे
सारी उम्र सक्खने ही रहे।
***

*** सक्खने - खाली/कोरे/पंक्ति से बाहर/शून्य**
**** ओसियां - प्रश्नावली**
***** बंड - पकाए हुए चावलों में जो दाना छिलके समेत रह जाता है।**

पहला पत्थर (कवितांश)

मेरी छंड* से लिपटाकर;
और बच-बचाकर,
जिसने मेरा फूल-पत्र
उसकी छत पर पहुँचाया था-
वह था:
मेरी जवानी का पहला पत्थर!
***

*** छंड- (Throw) पत्थर आदि फेंकने को छंड कहते हैं।**

विजेता इतिहास का निर्माण करेंगे और हारे हुए रचेंगे कविता - मलेशियाई कवि जुरीनाह हसन की कविताएं

चयन एवं अनुवाद - यादवेन्द्र

73 वर्षीय जुरीनाह हसन (हनीरुज उपनाम) मलेशिया की सबसे प्रतिष्ठित कवि कथाकारों में शामिल हैं और देश की पहली स्त्री राष्ट्रकवि (नेशनल लॉरिएट) हैं। बचपन में उन्हें लड़की होने के नाते ज्यादा बोलने से और घर से बाहर निकलने से मना किया जाता था सो वह अपना अधिकांश समय रेडियो पर बजने वाले गीत सुनकर बिताया करती थीं। उन गीतों के चलते से उनका कविता की ओर झुकाव हुआ। अब तक उनकी लगभग दो दर्जन किताबें प्रकाशित हो चुकी हैं पर उन्हें लगता है कि बारह वर्ष से लिखना शुरु करने वाले को कहीं और ज्यादा लिखना चाहिए था। उनकी रचनाओं के अंग्रेजी, फ्रेंच, स्पेनिश, रूसी इत्यादि भाषाओं में अनुवाद प्रकाशित हैं।

यहां प्रस्तुत कविताओं के अनुवाद मलय भाषा से उनके खुद किए अंग्रेजी अनुवादों पर आधारित हैं। zurinah1306.blogspot.com से साभार - यादवेंद्र

मैं खुद को कैसे देखती हूं

अब मैं एक बावली अभिनेत्री हूं
बिल्कुल खाली मंच पर
पर्दा गिर गया है
और दर्शक सारे जा चुके हैं
लेकिन मैं हूं कि अभिनय किए जा रही हूं
संवाद की पसंदीदा लाइनें
दोहराए जा रही हूं
" ईश्वर, आपकी मेहरबानी
आपका आभार हे ईश्वर
कि आपने मुझे हर चीज दे दी
सिवा एक चीज के
जिसकी मुझे सबसे ज्यादा ख्वाहिश थी।"
***

इतिहास और कविता के बारे में

इतिहास की किताबों में लिखा है
मर्दों ने बनाए तमाम राजघराने
और लड़ते रहे एक के बाद दूसरी
कभी न खत्म होने वाली जंग
विजेताओं ने देशों की हुकूमतें संभाली
और हारने वालों ने की बगावतें

विजेता इतिहास का निर्माण करेंगे
और हारे हुए रचेंगे कविता
***

नन्ही चींटियां

मैं थोड़ा सा शहद गिराती हूं जमीन पर
कुछ चींटियां आ जाती हैं
कुछ मिनट बीते
तो और चींटियां इकट्ठा हो गईं
देखते देखते चींटियों का तांता लग गया
लाइन लगा कर चली आ रही हैं।

मैं उन्हें निहारते हुए सोचती हूं
कि कैसे बगैर पुकारे, कोई आवाज़ निकाले
वे अपने दोस्तों को इकट्ठा कर लेती हैं
कि जल्दी जल्दी आओ
देखो यहां खाने को कुछ है
मैंने किताबों में पढ़ा था
कि जंतु आपस में बोलते बतियाते हैं

यह सब तो मैंने अपनी आंखों देख लिया
और उनकी दक्षता पर मोहित हो गई
एक दिन मैंने एक चींटी को कहते सुना: यह मत
भूलना कि हम
इंसान नहीं
महज़ जानवर हैं
जब हम एक दूसरे के
अगल बगल से गुजरते हैं
आपस में बोल बतिया लेते हैं
पर हम किसी भी हाल में
झूठ नहीं बोल सकते
इंसान की तरह हम चतुर सुजान नहीं है
खुदा की बनाई तमाम कायनात में
इंसान ही इकलौता ऐसा जीव है
जिसके पास झूठे बोल बोलने
और उन्हें पूरी धरती पर फैला डालने की
काबिलियत है।
***

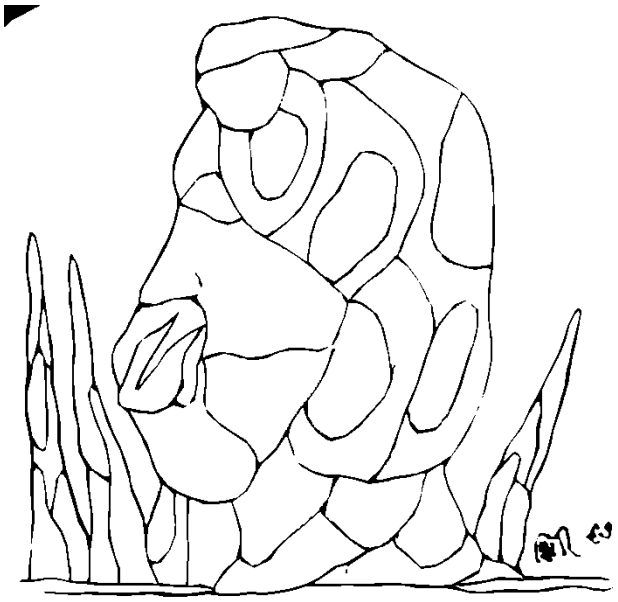

सपना इतनी दूर कभी न लगे जितनी यह दुनिया

सीमा सिंह की कविताएं

सीमा सिंह की कविताएं प्रेम, प्रतीक्षा, स्वप्न, पीड़ा और इच्छाओं के अछोर विस्तार में खड़ी कविताएं हैं। इस विस्तार में उनसे पहले भी एक समूची दुनिया है, उसी दुनिया से ये कविताएं आत्मीय संवाद करती हैं।

मैं एक स्वप्न की प्रतीक्षा में हूँ

मैं एक स्वप्न की प्रतीक्षा में हूँ
जिस भी क्षण वह प्रवेश करे मेरी नींद में
मेरी आँखें जागते हुए देखे उसे
देखें कि कैसे जन्म लेता है एक सपना
और आख़िर कितनी होती है उसकी मियाद

कुछ है जो दुनिया से कहना नहीं चाहती अब
कि कहते कहते थकने लगी हूँ
जिसे बोलने के लिए मुझे एक सपने की ज़रूरत है

कोई भय कोई मर्यादा कोई सीमा नहीं हो जहाँ
जहां उड़ेल सकूँ सच को हूबहू कि जैसा वह है
जिसे सुनने के बाद कोई फ़ैसला मेरे इंतज़ार में न खड़ा हो
और न ही हो कोई ताकीद मेरे किरदार की

समय की रेत पर खड़ी ढूँढ रही हूँ आदिम प्यास
जिसमें छिपी है बेकल प्रतीक्षा और पीड़ा
अपनी अंतिम साँस और इच्छा से पहले
चाहती हूँ कि सपना निकल भागे मेरी आँखों से
किसी दूर हरे घास के मैदानों में
आँखें जहां तक देखे दुनिया का सारा हरा ही देखें

सपना इतनी दूर कभी न लगे जितनी यह दुनिया
इतना धैर्य इतनी भाषा इतना प्रेम हमेशा बचा रहे

कि जिस भी क्षण छोड़ कर चल दूँ दुनिया को
फिर किसी सपने के लिए न पड़े आवश्यकता
किसी आन्दोलन किसी क्रांति की
वह उतना ही स्वाभाविक लगे जितना कि आती जाती साँस !
***

किसी और दिन की तलाश में

बारिश को देखते हुए
देख रही हूँ भीगता हुआ दिन
भीग रहे आदमी और पेड़
सड़क और गलियाँ, सरकारी इमारतें
उन पर लगे सरकारी झंडे
बड़े बड़े होर्डिंग
नेताओं की विशाल क़द मूर्तियाँ
शहर का अकेला नीला पुल
और उदास नदी भी

इसी बीच एक भीगी हुई चिड़िया
ढूँढती है छुपने की जगह
और पेड़ की सबसे ऊँची टहनी पर
बैठ कर देखती है बारिश

उसकी आँखों का अचरज उतर आया है
मेरी आँखों में

मैं किसी और दिन की तलाश में
देखती हूँ आज का भीगा हुआ दिन
याद आता है खूँटी पर लटका घर का अकेला छाता
भीगे दिनों की सोहबत में वही रहा उपस्थित सदा
उसके होने से जाता रहा भ्रम अकेले होने का
वो भीगता रहा मेरी जगह
और मैं उसके सहारे ही पार करती रही
बाहर भीतर उग आये जंगल

बारिश के ही दिन थे
जब कहा किसी ने कि जाता हूँ
तो नदी में पानी अचानक बढ़ गया था
डूबने की आशंका में बैठी रही देर तक किनारे
और देखती रही जाते हुए को
भीगा हुआ मन और भरी हुई नदी
भला कहाँ रोकी जा सकती है !
***

रात और बारिश

रात के अंतिम पहर में
स्वप्न से भाग आयी एक स्त्री
देखती है रात में हो रही बारिश

वह बारिश में रात नहीं
रात में बारिश को देख रही
अनुभव से जानती है अंधेरे का गाढ़ापन
दिखाई न दे कुछ तो भी

स्पर्श से पहचानती है तरलता

पीठ पर उग आयी इच्छाओं की भीत
अधिक भार से जब डूबने लगती है
वह देखती है मेघों से भरा आकाश
सुनती है बारिश की तेज जलधार
झींगुरों का संगीत
मेंढकों की टर्र टर्र
कितने स्वरों में बोल रही यह रात

पेड़ निस्तब्ध भीगे हुए झर रहे
पत्तों से छन कर आती बूँदें
किसी उँची पहाड़ी से गिरते झरने सी
मिट्टी की यात्रा में शामिल होने को विकल हैं

जलधारा बहा ले जाती समस्त स्मृतियाँ
समस्त इच्छाएँ
पानी भी एक रास्ता है मुक्ति का

थमते थमते बारिश थम जाती
हवा में गमक उठती मटियारी गंध
लैम्प पोस्ट के नीचे छोटे गड्ढे में
उभर आया है एक छोटा तालाब

देर तक तकते हुए गड्ढे के पानी को
सोचती है वह
अतल में डूबने को इतना भी पर्याप्त है !
***

प्रतीक्षा में

जिस क्षण लगता है
सब विलग जायेगा
रीत जायेगा साँझ का
अकेला तारा भी
उसी क्षण कहीं आकाश में
चमक उठती है बिजली
चलने लगती हैं हवाएँ
दिशाएँ बदल लेती हैं रास्ता
एक तितली के पंखों पर
सवार सारे रंग
बिखर जाते हैं अनायास

हम नहीं जानते कि
कुछ भी घटने में
छिपी है कितनी पीड़ा
कितना आर्तनाद है उसके भीतर
सृजना के क्षण कितने
असहनीय हो उठे हैं
और मृत्यु कितनी रोज़मर्रा
आँखें खोलो तो समूचा दृश्य
बदल चुका होता है
और हम व्यतीत कर देते हैं
बची हुई उम्र प्रतीक्षा में !
***

ओड़िया कविताएं : बंशीधर षड़ंगी और फनी महांती

चयन और अनुवाद पारमिता षड़ंगी

अनुनाद ने हमेशा से ही अन्य भाषाओं की कविताओं में आवाजाही का संकल्प रखा और निभाया है। हमारे आर्काइव में हमारा यह संकल्प देखा जा सकता है। भाषाएं वे नदियां हैं , जो भूगोल की सीमाओं से परे संसार के एक छोर से दूसरे छोर तक अबाध बहती हैं, हमारे हृदय ही उनका समुद्र हैं, जहां वे गिरती हैं। कहना न होगा कि अनुनाद की संकल्पना हमने ऐसे ही एक हृदय के रूप में की है। नए रूप में आने के बाद यह अनुनाद की पहली पोस्ट है, जिसे पारमिता षडंगी ने हमारे लिए संभव किया है उड़ीसा से आयी इन दो कविताओं के साथ। ये दोनों ही कवि साहित्य अकादमी पुरस्कृत समादृत वरिष्ठ कवि हैं।

अनुवादक

पारमिता षड़ंगी: ओड़िया साहित्य जगत में पारमिता षड़ंगी एक सुपरिचित नाम हैं । वह अपनी आँचलिकता में सशक्त स्त्री – कथाकार एवं कवयित्री ही नहीं, कुशल ओड़िया भाषानुवादक भी हैं। उन्हें हिंदी और ओड़िया साहित्य में कई पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। उनकी रचनाएँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों और विदेश में भी प्रकाशित हुई है।

ढूंढते हुए : बंशीधर षड़ंगी

सबेरे-सबेरे कौए की “काँव-काँव“
कहने के सिवा और
कोई काम बाक़ी पड़ा है जो
इतनी जल्दी मची है !
वो फिर कल नहीं आयेगा क्या ?

सुखी नदी सो रही है साँप के जैसी
हवा पानी के आने से फिर उछल जायेगा,
पतझड़ पेड़ों का ख़ालीपन है
बारिश के गिरने से वह
ग़ायब हो जायेगा,
रास्ता भी मिल जायेगा
ठीक से ढूंढने पर ।

इस बीच मगरमच्छ ने
नदी के बीचोंबीच पहुंचा दिया है।
किसने क्या स्तुति की थी याद नहीं,
निरे शुष्क शब्दों में
प्रार्थना करने से नहीं चलेगा नहीं क्या ?

पलभर खड़े हो जाओ बरामदे के उपर स्पष्ट हो जायेंगी
सब बातों की अब तक न खोजी गई दिशा
और देर ना कर
वापस लाना होगा विश्वास को ।

कभी-कभी कहाँ से क्या बिगड़ जाता है
जो आस्था टूट जाये विश्वास से
बीच के *बरोड़ा हमेशा
हरकत झेलते हैं,

धान सब भूसा होने से
क्लेश होता ही है मन में ।

एक जगह पर और कितने दिन बैठेंगे ?
फिर लौटना संभव नहीं होगा
छोड़ आये घर को,
एक दिन अवश्य भेंट हो जायेगी,
ढूँढ़ते हुऐ लोक के साथ ।
***
*बरोड़ा :- नारियल पेड़ के पत्ते

डॉ बंशीधर षड़ंगी

ओड़िया भाषा के विख्यात साहित्यकार हैं। इनके द्वारा रचित कविता संग्रह 'शबरीचर्या' के लिए उन्हें सन् १९९१ में ओडिशा साहित्य अकादमी और कविता–संग्रह 'स्वरोदय' के लिये सन् २००६ में साहित्य अकादमी पुरस्कार (ओड़िया) से सम्मानित किया गया। उन्हें अन्य कई पुरस्कारों से भी सम्मानित किया गया है।

चित्र प्रतिमा- डॉ. फनी मोहांती

किस चित्रकार ने सजा दिया है
तारों के दीप में प्राचीन आकाश को
किसी मन्वन्तर से तुम जो गई हो
ऐसे ही एक आकाशलोक में
जहाँ तुम्हारी न कोई ख़बर है
न कोई ठिकाना ।

तुम कहाँ हो मानमयी !
कौन-से इन्द्रियेतर राज्य में?
दीपावली की आलोक माला में?
नीले आसमान के झिलमिल किरणों में?
या अखंड नीरवता में ?
तैरते हुए बादलों के टुकड़ों में?
या महाशून्य की धुंधली हीरक पूरी में ?

कहाँ हो मानमयी?
गुनगुनाती काली रात की
मुलायम बिस्तर पर
गिटार की झनझन करती
टूटी हुई कर्कश रागिनी में ?
स्वच्छ अनंत सौंदर्य की मधुरिमा में,
घर वापस आती हुई ?
चिड़ियों की चहचहाहट में ?
या आषाढ़ की अलसाई बारिश में,
कहाँ हो तुम?

कौन-सी जगह हो , मानमयी ?
मेरा जीवन, मेरी मृत्यु
तुम्हारे गीतमय,
ताजा फूलों के जैसे

स्मृति और विस्मृति के न भूलने वाले
धीमे-धीमे जलने वाले
शाम के दिए जैसी।

तुम हो, तो वसंत है,
बहार है , वैराग्य है
भोग है और निर्वाण भी है,
न-न करके भी
जीवन का पात्र मेरा भरा हुआ है।
***

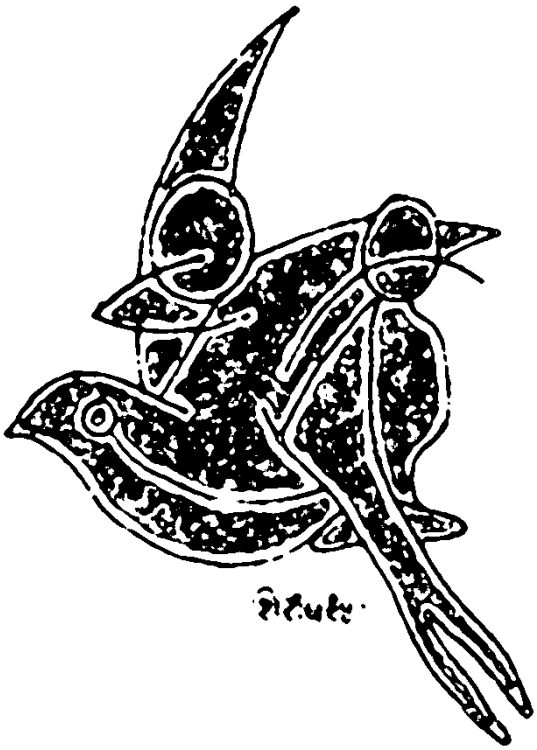

डॉ. फनी मोहांती

ओड़िया भाषा के विशिष्ट साहित्यकार हैं। डॉ. महांति को 'ओडिया और 'केंद्र साहित्य अकादमी पुरस्कार' के साथ अंतर्जातिक हिंदी परिषद्, पटना से 'साहित्य शिखर सम्मान' से विभूषित किया गया है। वो अन्य कई पुरस्कार से सम्मानित भी हैं।

हिंदी और ओड़िया साहित्य में कई पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। उनकी रचनाएँ भारत के विभिन्न क्षेत्रों और विदेश में भी प्रकाशित हुई है।

लेकिन तुम प्रेम होते, तो होता कितना अच्छा

पंखुरी सिन्हा की प्रेम कविताएं

पंखुरी सिन्हा हिन्दी की सुपरिचित कवि हैं। नए शिल्प- विन्यास से रची गयी उनकी प्रेम कविताओं का अनुनाद पर स्वागत है।

1

शिकारी की तरह आए तो
प्रेम नहीं है! जाल बिछाए
तो प्रेम नहीं है! आखिर यह
मान लेने में क्या हर्ज़ है
कि प्रेम नहीं होता उन बहुत
सी जगहों पर, जहाँ हम उसे
ढूँढते, तलाशते हैं, टटोलते हैं
हाथों से, और छू पाते हैं हवा
अंतरिक्ष, कभी कभी आकाश
और पाताल भी, और लौट आते
हैं वहीं, जहाँ से हमने शुरु की थी
यात्रा, इन सबके एहसान मंद
हमें हमारा पता, ठिकाना बताने
के लिए!

***

2

उन सारे मंसूबों पर
ईंट ईंट चढ़ा
जो दूसरे के बलिदान
नहीं, तो घनघोर
समझौते से आते
हों, उस प्रेम के ख़िलाफ़
बगावत करना क्या बुरा है?

***

3

प्रेम देह पर अलबत्ता हल्के
बुख़ार-सा चढ़ जाए
उचारे जाने का मोहताज
नहीं, लेकिन सुनने में
कितना अच्छा लगता है
प्रेम आसपास है

दूर नहीं!
***

4

एक ही नाम से बिक रही
है, चाहत और वहशत
बाज़ार में! क्यों काबिज़
करने के इरादे को
प्रेम का लिहाफ़
चढ़ाते हो?
***

5

इतनी चाहिए होती है
साफ़गोई उन्हें
हम कहां आये
कहां गए
किससे मिले
किससे नहीं
किस प्रयोजन
वो हमसे पूछते नहीं
हमें बताते हैं!
***

6

जान-बूझ कर चुभती हुई
बातों से जगाया न जाए
ज़रा ये ख़्याल किया जाए
कि क्या अच्छा लगेगा?
क्या ग़लत है यह
अपेक्षा प्रेम से?
यह समझ कि कही जाने वाली
बातों का सीधा गणित क्या
बनता है, इतनी संवेदना कि
अगले से सुनी, बातें याद रह सकें
इतनी ईमानदारी कि अगले की थकान
को अपनी शांत नींद की इच्छा
में महसूस कर सकें
पढ़ सकें दूसरे की कामनाओं
की लिपि, न बुलाया जाए कोई अनुवादक
पढ़ने को प्रिय का मन
प्रिय तुमसे इतनी अपेक्षा
गलत है क्या?
***

7

मैं चाँद हूँ
सूरज भी
मैं ही तारों की टिमटिमाहट
कहा उसने
'लेकिन तुम प्रेम होते
तो होता कितना अच्छा
कितनी नेक, भली होतीं
हमारी सुबहें, शामें!
तुम प्रेम होते हुए
क्यों होना चाहते हो
हर कुछ? यों भी
हर कोई बनना चाहता है
चाँद, सूरज और तारा
मेरे ग्रहों को महफ़ूज़
क्यों नहीं छोड़ते लोग?
रखने के लिए दिन और रातों को
चमकदार!?', मैंने कहा कि
न कहा प्रेम से, प्रेम को
ये तो बताएगा मेरा प्रेम ही
प्रेमी से, मित्र से, धरती और
अंबर से! मैंने हमेशा किया है
ईमानदारी से प्रेम!

दुनिया में कौन लौटता है अकारण इतनी बार
जितना मायके में लौटती हैं बहनें

राकेश मिश्र की कविताएँ

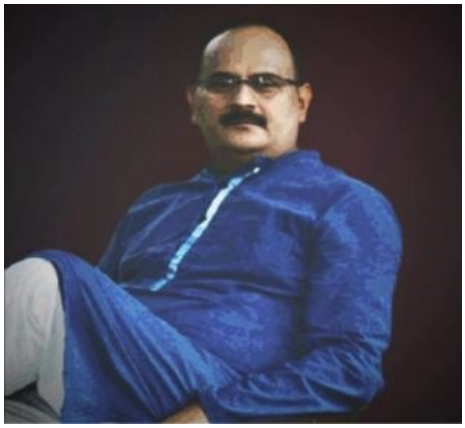

राकेश मिश्र की कविताएँ पहले भी अनुनाद पर प्रकाशित हुई और सराही गई हैं। साधारण व्यक्ति की दिनचर्या से उठाए गए प्रसंग और बिम्ब राकेश मिश्र की कविता का मूलाधार हैं। अर्थात् वे सामान्य जन-जीवन से विषय उठाते हैं और किसी भी तरह की भाषिक किंवा शैलीगत विशिष्टता से दूर ठीक उसी साधारणता से अपनी बात कहते हैं, जैसा जीवन उन्होंने अपने निकट पाया। यही देश का सामान्य जन-जीवन है। राकेश मिश्र इस जीवन के कवि हैं।

सबूत

सारा शहर जानता है
गुनाह
मरने वाले का
हत्यारों की बेगुनाही
अख़बार के इश्तहारों में है

कुछ सिरफिरों ने नशे में
सुनायी मौत की सजा
एक शहरी को

एक होश में बैठा हाकिम
जाँचेगा
उनकी बेगुनाही के सबूत
***

पूरा दिन

पूरा दिन बीता
ख़ुद से बाहर
देखते बोलते बतियाते चिल्लाते

मन का शोर
शहर के गन्दे नाले की तरह
बजबजा कर बहना चाहता है

कुछ चेहरे दिखे
ख़ुद में खोये हुए
कुछ आवाज़ें खोयी हुई
ख़ुद के बियाबान में
कुछ गहरी मुस्कानों वाली सूरतें

प्रत्युत्तर चाहती हों जैसे
ठिठकी रहीं देर तक

भूलना मुश्किल है
रक्तहीन ठंडी हथेलियों का स्पर्श

उपलब्धि हीन लौटा हूँ
शाम को घर
इससे तो अच्छा होता
सड़क किनारे सवारी की प्रतीक्षा में
सो गये रिक्शे वाले को जगाकर
बातें करते घर लौटता

मूँगफली के ठेले पर ठेकेदार की
प्रतीक्षा करते मज़दूर से
बाक़ी दिहाड़ी ही पूछ लेता

या अस्पताल के अहाते में
रात का ख़ाना पकाते तीमारदार से
पूछ लेता अगले दिन की दवा का हिसाब

इससे तो बहुत अच्छा होता
यदि किसी पागल से पूछ लेता
कैसी है दुनिया आजकल।
***

धोखा

साफ़ पानी और दाना
धोखा है चिड़िया के लिये
फँस कर गँवाती आयी हैं
पंख और प्राण
अनगिन पीढ़ियाँ
भूखे-प्यासे मर जाएगी चिड़िया
देखेगी नहीं कभी
साफ़ पानी और दाने की ओर
चिड़िया विद्रोही नहीं
चेतस हो चुकी है ।
***

लड़ाइयाँ

तुम लड़ना
वह लड़ाइयाँ
जहाँ चुप रहते हैं लोग

सान्त्वनाओं में अहर्निश रोते हैं
कितने सारे लोग
उनके पास थोपा हुआ
असीम धैर्य होता है
उनकी जेब में होता है
उम्मीदों का घोषणापत्र

ना-उम्मीदी अपराध है
शाबाशियाँ मिलेंगी तुम्हें
हौसला अफ़जाई करेंगे
लोग पर लोग

चुप्पी उन्हें भी चुभती है
एक जुलूस सम्भव है
तुम्हारे लिए शहर में
एक शोक प्रस्ताव हो सकता है
छूटी लड़ाइयों का

लोग ललकारेंगे पागलों की तरह
आसमान में मुट्ठियाँ होंगी
उन सबकी
तुम्हारे क़िस्से
चाय की दुकानों पर चर्चित होंगे

ध्यान रखना
जब लहुलुहान होगा शरीर
धुंधली होगी रक्त से आच्छादित दृष्टि
तब केवल आवाज़ें होंगी
तुम्हारे आसपास

एक अंतिम बार एकत्र होंगे लोग
शहर के चौक पर
बुझी मोमबत्तियों लिये हुए

सभी चुप होंगे
सिसकियों में रोते लोगों के
आंसुओं से गीले हो जाएँगे
उम्मीदों के सारे घोषणा पत्र
***

चुरमुरा

रात ८ बजे
चुरमुरे के खोखे पर भीड़
लैया चना प्याज़ हरी मिर्च
हरी धनिया काला नमक
दूर से ही मुँह को पनीला कर दे
ऐसी ख़ुशबू ऐसा स्वाद
चावल दाल सब्ज़ी की जगह
चुरमुरे खा कर सोयेंगे
इतने सारे लोग ।
***

विरोध

मैं नहीं चाहता
ना हो मेरा विरोध
काला हो सकता है
विरोध का पसंदीदा रंग
चिल्लाहट पसंदीदा आवाज
कौवों की सामूहिकता
काँव काँव व का समूह गान
टूट पड़ना किसी भी मरणासन्न पर
उन्हें मारकर टाँगना
सिद्ध नहीं करता
चौराहों पर ।
***

मायका

यूकेलिप्टस के सूखे शिखर की
टहनियों पर फुदकती
पल भर ठहरती
बिन चहके बे-आवाज
वह नन्हीं सी नीली चिड़िया
माँ- पिता बिन मायके लौटी है आज ।
***

बहनें

कोई अकेली तस्वीर नहीं होती है
बहनों की उनके मायके में

दीवाल पर सजी हुई
सामूहिक चित्रों में उपस्थिति होती हैं
परिचयात्मक रूप से झाँकती

कोई अलग कमरा नहीं होता है
यहाँ वहाँ बनायी बिछाई जगहों में ही
रहकर लौट जाती हैं

अलग अलग शहरों में बसते हुए
सींचती हैं परस्पर गर्भनाल
भाइयों को स्वप्न की पीठ पर लादे
पितरों की चिन्ता छाया से दूर
चलाती हैं गृहस्थी

दुनिया में कौन लौटता है
अकारण इतनी बार जितना
मायके में लौटती हैं बहनें ।
***

भूलना

मैं भूल नहीं सका
पहला वाक्य
जो मातृभाषा से इतर था

पहली चोरी
जो सहज हुई थी

पहला जवाब
जो सच के कारण छुपाया

पहली झिड़की
जो अकारण थी

पहली सफलता
जब कोई साथ न था।
***

दर्द

ख़ूब दर्द आये जीवन में
समय समय पर
कभी सुबह कभी शाम
कभी दिन कभी रात

कभी मन कभी शरीर पर
अलग अलग वय-सन्धियों पर
अलग रूपों में
दर्द का आगमन हुआ

कभी भूख कभी अभाव
कभी उपेक्षा कभी अपमान
कभी रोग कभी शोक के रूप में

प्रेम ने दिए
दर्द के सर्वाधिक रंग-रूप

सभ्यता ने दर्द को
कुचलने
कुंद करने
भूल जाने
सम्भालने के भी
अनगिन उपाय रखे सिरहाने

दर्द को कभी नहीं मिली
उसकी वाजिब जगह
दर्द को पीना-जीना सीखने को
नहीं बना कोई स्कूल
कोई गुरु

ख़ुशियों को पाने उपजाने के
बहुविध तरीक़े भी
दर्द को दूर रखने के
उपाय भर थे

दर्द की पहचान खोती गयी
सम्मान खोता गया
दर्द के खोते ही
खो गयीं
सारी ख़ुशियाँ ।
***

आवाज़

एक आवाज़
गीली मिठास वाली
जुकाम में हो जैसे
मेरा नाम लेती है

सूने-सूखे रास्तों पर
एक मैले कुचैले कपड़ों और
उलझे बालों वाला आदमी
अक्सर मिलता है
तेज़ कदमों से चलता हुआ
जैसे बहुत ज़रूरी हो
जल्दी पहुँचना
नामालूम लौटता कब है

मैं मानसूनी बादलों के सामने
खड़े ठूँठ पेड़ सा
अपनी इच्छाओं से निर्धारित
स्पेक्ट्रम में जीता हूँ

चेतना के सघन बोझ से
थका दिहाड़ी मज़दूर
पीकर पड़ा है
दारू अड्डे पर

एक टाँग पर
लंगड़ाती हुई मुर्गी
घूर पर कीड़े खोजती हुई
अभिशप्त है
किलो भर होने तक

एक सायरन बजाती एम्बुलेंस
बहुत देर से फँसी है
दफ़्तर से घर लौटने की जल्दी में
जाम हुए रास्ते पर

घर नहीं लौटा हूँ
मैं भी ।
***

कड़कनाथ

मध्यप्रदेश में झाबुआ के
आदिवासी किसान के यहाँ से
८०० रुपए में चलकर

इलाहाबाद में १००० का हुआ
कड़कनाथ

फिर जगदीशपुर में १२०० रुपये का होकर
बड़ी गाड़ी में सवार हुआ और
एक सुहानी शाम
हाकिम के बंगले में मारा गया
कड़कनाथ

झाबुआ की याद
आँखों में लिये ।
***

संस्मरण

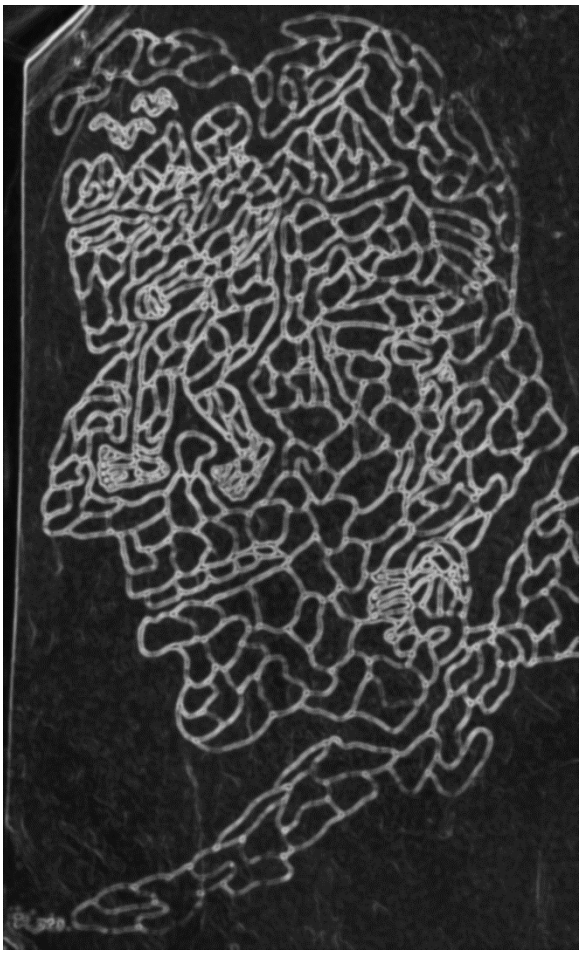

मेरे कक्ष में
मरा पड़ा है
एक आदमी
दाहिने हाथ में
संस्मरणों की किताब लिये

जिसके कुछ पृष्ठ
मेरे बारे में हो सकते हैं
मुझे पढ़ने हैं
वो पृष्ठ
अन्तिम विदा से पहले ।
***

कूड़ा कहीं का भी हो कूड़ा कूड़ा ही होता है

दिवा भट्ट की दो कविताएँ

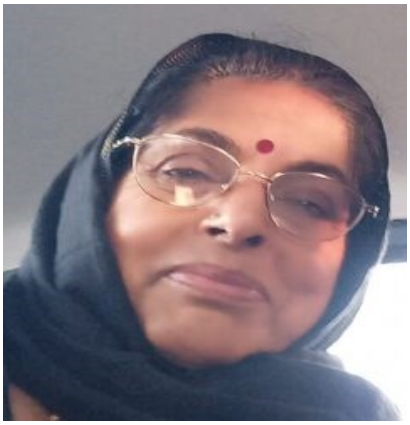

कवि-कथाकार दिवा भट्ट हिन्दी के अलावा गुजराती और अपनी माँबोली कुमाउनी में भी लिखती हैं। बहुत धीमे स्वर में वे बरसों से लिखती और छपती रही हैं। उनका लेखन जीवन की जटिल राहों की सरल-सादी अभिव्यक्ति बन जाता है। बेमिसाल और असाधारण के बरअक्स वे साधारण और सीधी राह चुनती हैं।

कूड़ा

हर शहर के पास होता है अपना एक कूड़ा
बहुत-बहुत तरह का होते हुए भी कूड़ा एक ही होता है
बहुत-बहुत होने पर भी
कूड़े को बहुवचन में नहीं बदला जा सकता

कूड़ा कहीं का भी हो
कूड़ा कूड़ा ही होता है

महंगे दामों पर लाई गई
प्यार से घर में बसाई गई हर चीज को
एक न एक दिन
कूड़ा बनकर घर से बाहर निकलना होता है
ताजी हवा के साथ
खुशी-खुशी घर में घुसी धूल को भी फटकार और बुहार के साथ
निकलना ही होता है
बाहर भले ही वह दुबक कर क्यों न बैठ जाए
किसी कोने में
या कुर्सी-चारपाई के पैताने कहीं भी
कूड़े को घर और आंगन पसंद है
घर और आंगन उसे प्यार देकर दुत्कार देते हैं

कूड़े की नियति है फटकार और दुत्कार
हर शहर के पास होता है अपना एक कूड़ा
जो शहर के बाहर जाकर विश्राम पाता है

सजे-संवरे शहर के आलीशान घरों की असलियत बताता कूड़ा
विशिष्ट को सामान्य बनाना जानता है

सभी घरों से आता है
परंतु उस पर किसी का नाम नहीं होता
अलग-अलग घरों से आने वाला कूड़ा
बाहर आते ही
जाति-धर्म-देश-भाषा और संपन्न-विपन्न का
भेद भूल जाता है
एकता की मिसाल बनकर अपना कूड़ा- धर्म
निभाता है

बहुत-बहुत होते हुए भी
कूड़ा एकवचन ही बना रहता है।
****

घर

दुबक कर बैठा हुआ है भीतर
एक घर
सामने खड़ा हो गया अचानक आकर

हैं!
तू कहां से आया अभी?
तू तो दिखाई ही नहीं दिया था वर्षों से!

सुला दिया था तुझे वर्षों पहले
भीतर- भीतर कहीं भीतर
प्यार से ओढ़ा कर थपका कर
जैसे ओढ़ाती-थपकाती थी मां मुझे छुटपन में
पुचकारती हुई
कुछ गुनगुनाती हुई
फिर जुट जाती थी अपने काम समेटने में
मैं भी सुला आई तुझे भीतर के एक कोने में
और जुट गई नई-नई व्यस्ताएं समेटने में

हर नई व्यस्तता के साथ डालती गई तुझ पर
एक नया ओढ़ावन
तू ढँकता रहा
भीतर- भीतर दबता रहा
मैं घर से बाहर जाकर
व्यस्त होती गई ढूंढने में
नए-नए घर

कैसे-कैसे तो थे घर
छोटे- बड़े
विशाल
सुविधाओं से लदे-फँदे

इतने ढेरों मकानों की भीड़ में तू कहीं नहीं था
मेरा अपना घर कहीं नहीं था
कभी-कभी
किसी निर्जन विस्तार के एकांत में
धीरे से हटाती हूं परतें
तो थक जाती हूं
हटाते- हटाते
कितना नीचे छिप गया रे तू !

मेरे घर !
कोशिशें जब हाथ बांधकर बैठ जाती हैं
तब अचानक बाहें फैला देता है तू
दुबक जाती हूं मैं तेरे भीतर
सुलाती थी तुझे बचपन के खेलों में
छुपाने लगी सच में
बड़ी होते-होते
दबाने लगी तुझे

और भागने लगी
सौंप दिए मैंने अपने पांव
रण की मरीचिकाओं को

रेत के ढूहों के भीतर फँस गये पांव
आंखें खोज रही हैं तुझे
हाथ लपक रहे हैं
तेरे आभास को पकड़ने के लिए
अपनी ही खींची हुई इबारतें
उलझ गई हैं

बचपन में सीखी हुई बुनावटें
अपनी ही रची हुई इमारतें
चिढ़ा रही हैं

हँस रही है
सुला रही है
रुला रही है
मचलती हुई प्यास

प्यास
जिसे वचन दिया था पानी का
भरोसा दिया था तृप्ति का
पीछे- पीछे चली आ रही है वह हठीली बालिका

डपटती हूं
नहीं मानती
अब मैं हूं और प्यास है
प्यास है और हठ है
हठ है और हार है

लेकिन मैं नहीं करूंगी धारण इस हार को
उछाल दिया है मैंने उसे दसों दिशाओं की ओर
करो जो करना है इसका
मुझे नहीं चाहिए कुछ भी
न हार
न जीत
एक किनारे प्यास
दूसरे किनारे जल
खेलते रहे जीवन भर लुका- छुपी का खेल
दौड़ते रहे समानांतर
बीच में बहती नदी हूं मैं
ठहरी हुई वह सड़क हूं मैं
चिर प्रतीक्षित द्वार हूं मैं
द्वार को थामे खड़ा है घर

मेरे भीतर बसा हुआ घर
मुझे बचाते- बचाते कहां चला गया
जा रही हूं उसे ढूंढने
कोई चलेगा मेरे साथ?
***

रात एक बेबस ईश्वर है जो सब कुछ देखते-जानते हुए भी बस चुप रहती है।

शिवम तोमर की कविताएँ

शिवम तोमर हिन्दी की अभी प्रकाश में आ रही है युवतर पीढ़ी के सदस्य हैं। उनके सामने एक तयशुदा काव्यभाषा और सुनिश्चित बिम्ब-व्यवहार से अलग कर कुछ दिखाने के लक्ष्य के साथ-साथ सामाजिक-राजनीतिक जीवन-स्थितियों को कविता में कहने की चुनौती भी है। इस चुनौती का सामना वे बख़ूबी कर रहे हैं। उनकी कविताएँ अनुनाद पर पहली बार प्रकाशित हो रही हैं। कवि का यहाँ शुभकामनाओं के साथ स्वागत है।

रात एक बेबस ईश्वर है

देश भर में समान मात्रा में फैली हुई
यह अदम्य रात है

इसे भूरे-काले बेघर कुत्तों,
महत्त्वाकांक्षाविहीन चोरों और
अल्पवेतन और अनादर के बीच पिसते हुए
चौकीदारों की सोहबत है

स्ट्रीटलाइट के ऊपर लंगूरों के जैसे बैठी रात
जानती है कि पिंक पी-सी-आर की जीप
कितनी बार अँधेरे में चक्कर लगाती है

उम्रदराज़ यू-पी-एस-सी एस्पिरेंट्स की खिड़कियों पर
उनके सिलेबस की मोटाई से विरक्त
रात उनके कानों में लगी लीड़ से
उनके हिस्से का संगीत सुनती है

बीयर-बार में आमने सामने बैठे दो जन
जब अपनी-अपनी कुढ़न एक दूसरे से साझा कर
मौन को प्राप्त होते हैं
तब रात जानती है कि
उनके पास सोचने को क्या बचता है

रात जानती है
एक सेवानिवृत विधुर का मृत्यु-बोध
और बिस्तर की सिलवटों में सुबकती
एक महिला की सम्मति के बारे में

रात जानती है कि
कैसे एक माध्यम वर्गीय नौकरीपेशा की चिंताएँ

महीने-दर-महीने बदलती हैं

रात एक बेबस ईश्वर है
जो सब कुछ देखते-जानते हुए भी बस चुप रहती है।
***

ज़ल्दबाज़ी एक नया सामान्य है

लगभग हर बार हर जग़ह
सही समय पर पहुँचा हूँ अब तक

कुछ एक-आध वाक़ि'आत को छोड़ दें तो
लंबे-लंबे पैरों को
चलने और दौड़ने के बीच का
तरीका सिखाया

सामान्य से थोड़ा तेज़
अपने स्वार्थ के लिए
भागने से थोड़ा धीमे
ताकि सड़कों पर बदहवास न दिखूँ

समय पर पहुँचने की ऐसी आदत हुई है
कि जल्दी पहुँचकर
दूसरों को शर्मिंदा कर बैठता हूँ
उन्हें लगता है कि उन्हें देर हुई

क्या है जो छूटा जा रहा है
कौन-सी और किस तरह की देर है
जो अब तक हुई नहीं
लेकिन फिर भी
उसका डर बना रहता है

कई बार तो समय पर पहुँचना
न पहुँचना
महत्त्वहीन होता है
और तब भी सामान्य से
तेज़ भागता हूँ मैं

भांजे-भांजियों के पी-पूँ करते खिलौने
उनसे ज़्यादा मेरे हाथों में रहते हैं
आज भी भाती हैं बाल-कहानियाँ
जिनमें शेर चीते भालू
आदमियों की तरह
बातचीत करते हैं

बुढ़िया के बाल बेचने वाला जब गली से गुजरता है
तब उसे एकटक देखता हूँ
एक खुशमिज़ाज गुलाबी रंग
एक खोया हुआ मीठा-सा स्वाद

मेरी इंद्रियों पर इंद्रधनुष-सा फैल जाता है
और मैं स्वयं से सवाल करता हुआ
बालकनी में टंगा रह जाता हूँ कि
" कहीं मैं इस उम्र तक भी
जल्दी तो नहीं आ पहुँचा? "
***

चिड़ियों की चोंच

लाल क़िले के परिसर में
दीवान-ए-आम के पीछे
है संगमरमर की एक दीवार
जिस पर उकेरे गए
सुंदर फूल, पौधे और चिड़ियाँ

ये चिड़ियाँ इतनी असली लगती हैं
कि उनकी ओर बढ़ाये गए
एक कदम पर फुर्र से उड़ जाएँ

उस परिसर में घूमती-उड़ती चिड़ियों
को भी ऐसा ही लगता है

दीवार पर उभरे हुए फूल-पौधे-चिड़ियाँ
सब असली लगते हैं
वे दीवार पर बनी फूल-पत्तियों
को खाने की कोशिश नहीं करतीं
लेकिन असली-सी दिखने वाली
दीवार वाली चिड़ियों को
चोंच मार कर बाहर निकाल लेना चाहती हैं
लाल क़िले की ज़्यादातर चिड़ियों की
चोंच में दर्द रहता है

एक दिन कुछ चिड़ियों की
चोंच टूट कर गिर जाएंगी
और तब शायद
उस दीवार पर रह जाएंगे
सिर्फ फूल-पत्तियाँ
और क़ैद का एक इतिहास
***

मोबाइल टॉवरों के ऊपर बैठे कबूतर

मोबाइल टॉवरों के ऊपर
बैठे रहते हैं कबूतर
अदृश्य सिग्नलों और तरंगों में
चोंच मारते हैं,
कान लगा कर
हमारी बातें सुनते हैं

हमारी निजता की गुप्त दुनिया में
रोशनदान बनाते हैं।

मेरी तुम्हारी फ़ोन पर बात हो रही है
और मैं उस कबूतर को देख रहा हूँ
जो टावर पर बैठा हुआ है

मैं तुमसे बाय कहूँगा
और वह उड़कर मेरी कमरे की खिड़की पर आ
पहुँचेगा
गर्दन हिला हिला के
मसखरी भरे गुटरगूँ करेगा

जैसे भाभी हँसती हैं मंद-मंद
मुझे तुमसे बात करते हुए
देख लेने पर।
***

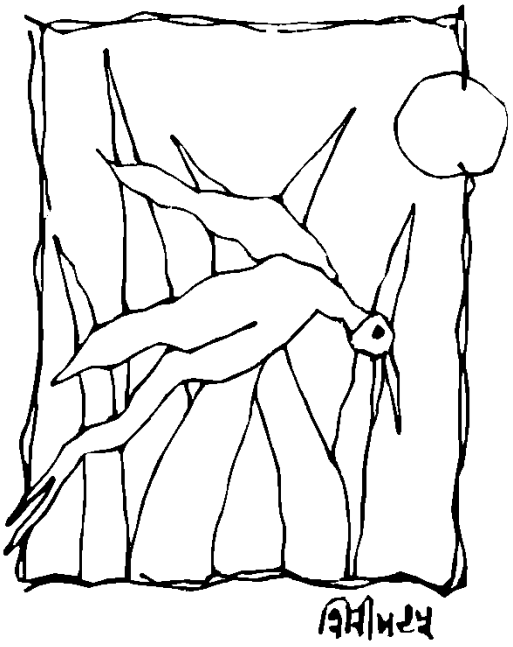

आसमानी शर्ट

प्रतिभा गोटीवाले

प्रतिभा गोटीवाले हिन्दी की सुपरिचित कवि-कहानीकार हैं। स्मृतियों के रंग की शिनाख़्त और विस्मृतियों के रंग की तलाश करती उनकी यह कहानी हमें मिली है। भाषा में कविता और रचाव में डायरी हुई जाती यह कहानी दरअसल क़िस्सागोई के उस शिल्प को साधती है, जो इधर दुरूह होता गया है।

***

ट्रेन चल दी थी .....

आवाज़े धीरे धीरे पीछे छूट रही थी। अब बस मैं थी, मेरा अकेलापन था और उसके भीतर मेरे होने का संगीत था।

सामने वाली सीट को देखकर ऐसा लग रहा था, जैसे कोई अभी-अभी जल्दबाज़ी में यहाँ से गया होगा। किसी की अभी अभी रिक्त हुई जगह में कितना वह बचा रह जाता है ! जैसे उस चादर में अब भी उसकी गर्माहट बची महसूस हो रही थी। अब भी वह जगह उसके होने से धड़क रही थी।

उसके तकिये के नीचे से एक डायरी झाँक रही थी। मैं उसे उठाकर दरवाज़े तक गई कि शायद कोई इसे लेने के लिए दौड़कर आता हुआ दिखाई दे, लेकिन ऐसा कुछ नहीं हुआ। मैं अपनी सीट पर लौट आई और पास वाली सीट पर बैठे यात्री से पूछा पर कोई फायदा नहीं, क्योकि वह भी इसी स्टेशन से ट्रैन में चढ़ा था। फिर मुझे लगा शायद वह सीटवासी टॉयलेट गया होगा।

मैं उस डायरी को थामे कितनी देर बैठी रही पता नहीं। कोई नहीं आया।

डायरी जैसी चीज़ के हाथ में आ जाने पर पढ़ने का लालच किसी भी साधारण बुद्धि वाले इंसान को होना स्वाभाविक है। अपनी सीट पर चादर बिछाकर तकिये के ऊपर कम्बल रख, मैं अनायास ही डायरी के पन्ने पलटने लगी और कब पढ़ने में तल्लीन हो गई मुझे ही पता नहीं चला।

वह एक गहरी नीले रंग की डायरी थी। डायरी क्या थी, कह सकते है एब्स्ट्रेक्ट का एक पीस था। बिखराव में अपने आप को सहेजता एक तिनका था। बेचैनियों को समेटता कोई दिलासा और दिलासे की किरचों को समेटती स्याही थी।

कुछ सूखे हुए कासनी फूल थे और हर पन्ने पर कुछ नोट्स। एक अंतहीन रेगिस्तान और मरीचिका का भ्रम देते शब्द थे।

तारीख की जगह एक अजीब सी मनःस्थिति दर्ज थी।

जैसे संगीत का कोई नोट था जिसमें उतरो तो चारों ओर से आरोह अवरोहों से घिर जाता था मन, और फिर एक स्वरसंगति का हिस्सा बन जाना ही नियति थी।

धीरे-धीरे मैं उन पन्नों में डूबती गई।
लगातार किसी आवाज़ की तलाश में रहती हूँ ...
सुबह की द्रुत लय, दोपहर की मंद ठहरी हुई आवाज़े और रात की विलम्बित तालों के बीच से कही कुछ फिसल जाता है ..

जिसे छूना चाहती हूँ ...

दूर सड़क पर बहता शोर, हॉर्न की आवाज़ें, वाहनों की आवाजाही ..

इन आवाज़ों का भी एक दृश्य है , मेरे और उसके बीच एक बटर पेपर लगे होने जितनी दूरी है ..

मैं आँख बंद करके सुनती हूँ तो तमाम आवाज़ें लौटने की होती है ..
मुझे सुबह की ताज़ी और उत्सुक आवाज़ें ज्यादा पसंद है ....

नए दिन की उम्मीद लेकर निकले लोग दोपहर ढलते-ढलते जब दिन पर पुराने ढर्रे का ठप्पा लगा बासीपन लिए लौटते है तो शाम की आवाज़ कैसी व्याकुल सी हो जाती है ...

वह उन सब से नजरें चुराकर जल्दी-जल्दी उम्मीदों के पौधे बोने लगती है, ऐसा कुछ रचती है जो आज की थकान भुलाकर खूबसूरत कल की प्रत्याशा में फिर तरोताज़ा कर दे ...

चेहरे पर अनायास एक मुस्कराहट चली आती है , मैं शाम के कंधे थपथपा कर भीतर आती हूँ ..

अब मैं हूँ और आसपास कमरों की हवाओं को बदलते परदे है ...

किचन में चाय के उबलते हुए पानी में आसमान की दीवार से झरे पलस्तर सा धूप का एक टुकड़ा गिर पड़ा है ...

मैं पतीली के थोड़ा ऊपर अपना हाथ रखती हूँ तो वह मेरे हाथ पर बैठ जाता है,

मैं एक हाथ से चाय कप में छान लेती हूँ ... किचन से जाते हुए उस धूप के टुकड़े को फिर दीवार पर छोड़ आती हूँ...

विंड चाइम्स की मद्धम आवाज़ के साथ बहुत गहरी और स्पष्ट आवाज़ में एक कबूतर की गुटरगूँ इस समय की सबसे प्रोमिनेन्ट आवाज़ है ...
माँ जब भी मेरे पास आती अपना आधा मन घर पर छोड़ आती, वापस लौटने की एक हड़बड़ी उस पर तारी रहती .....

पूछने पर कहती मुझे अपने घर का अकेलापन साथी जैसा लगता है, इसलिए कही ज्यादा देर मन नहीं लगता साथी की याद सताने लगती है !

मैं सोच में पड़ जाती हूँ कि उसके घर के अकेलेपन में ऐसा क्या है जो वह उसे इतना करीबी लगने लगा है ?

क्या अकेलापन कोई नशा है जिसकी लत पड़ जाती है ?

क्या अकेलेपन की भी कोई आइडेंटीटी होती है ... रूप,गंध, देह होती है ?

मैं घर में घूम-घूम कर अपने अकेलेपन से बात करने की कोशिश करती हूँ, उसे देखने की लालसा जाग उठती है अचानक।

मैं सारे लाइट बंद कर देती हूँ, सारी आवाज़े बंद कर देती हूँ और दबे पाँव उसे ढूँढती हूँ घर के चप्पे-चप्पे में, लेकिन कही नहीं मिलता ....

खीजने लगती हूँ ...
'कुछ भी कह देती है माँ, ऐसा भी कभी होता है भला ? '

फिर अचानक एक दिन घर के सारे कामों को निपटाते हुए, मिक्सी, वाशिंगमशीन, टीवी, मोबाइल की तमाम आवाजों और घर के सारे सदस्यों की उपस्थिति के बीच किसी अमूर्त ने आकर मेरे काँधे पर हौले से अपना हाथ रख दिया ...

मैं चौंककर मुड़ी और उसे देखकर मुस्कुराती हुई मन ही मन कह पड़ी ...

' माँ मुझे भी मिल गया है मेरा वाला !'

तुम ....जो कोई नहीं हो, कही नहीं हो ..

मैं तब भी तुम्हें लिखती हूँ बार-बार .. तुम्हारे होने की ये कैसी आहटे है मेरे भीतर !

जिन्हें आकार देना ऐसा है जैसे समंदर की गीली रेत से घर बनाना तुम्हारी हँसी, बारिश ...उदासी, बादल ...गुस्सा, रेत ..प्रेम, अंकुर है फूटता हुआ ..

तुम, जिसकी आहट मैं लिखती हूँ, सालों-शताब्दियों के बाद या पहले जब भी आओगे तो पाओगे जैसे तुम यहाँ पहले भी आ चुके हो ...

जैसे कानों में पड़ती कोई आवाज़ पहले भी सुन चुके हो

जैसे छू चुके हो पहले ही कोई अनछुई छुवन ...
और मैं ! कही दूर से तुम्हें देखती होऊँगी ..

तुम्हारे दृश्य में मेरा होना ऐसा है जैसे दृश्यों के सफ़र से होते हुए एक महादृश्य तक पहुँचना और अदृश्य रच देना ....

एक बेआवाज़ बारिश का आना और गुज़र जाना .. वह भी एक दिन जैसा ही दिन था ....

ऊपर आसमान था नीचे ज़मीन, और इन दोनों के बीच सरसराती हुई दुनियाँ चल रही थी | घरेलू कामों की वैसी ही चीख़ें थी, चुप्पियों का भी वैसा कोलाहल था लेकिन इस कमरे से उस कमरे आते जाते हुए कुछ अलग लग रहा था, कुछ ऐसा जैसा पहले कभी नहीं लगा ..

कुछ ऐसा जैसा किसी के देखने से मन के भीतर बसंत का पहला फूल खिला हो ..

मैने अचरज से यहाँ वहाँ देखा, कही कोई नहीं था घर पूरा ख़ाली ..

मन में हैरत और एक गहरी मुस्कराहट पानी के बुलबुलों से हलचल मचा रहे थे कि मैं ठिठकी। नज़र बालकनी में टंगे कपड़ो की ओर गई। हाँ ठीक वही उस आसमानी शर्ट के उस पार कुछ था , मैंने फिर ध्यान से देखा ..

आसमान !!

आसमान अपनी नीली आँखों से मुझे देख रहा था ! कितनी सारी नीली आँखे थी उसकी !

अचानक मैंने देखा घर के चारों ओर जहाँ जहाँ भी खिड़कियाँ थी रोशनदान थे दरवाज़े थे वहा से उसकी नीली आँखे मुझे देख रही थी।

आह ये क्या ! कैसा सम्मोहन था उसकी आँखों में ! क्यों उसे इस तरह देखना था मेरी ओर ! क्यों मुझे पड़ जाना था इस तरह आसमान के प्रेम में !!

फिर तो हम रोज़ मिलने लगे ..... वह आता और मैं कपड़ों में अपनी देह छोड़ निकल जाती उसके साथ।

जब वह मेरी रूह को देह का आभास छोड़ नहीं पाने की झिझक में देखता तो अपने बादलों का एक पैरहन बना कर मेरी तरफ बढ़ा देता, जिसे पहन मैं निश्चिन्त हो जाती। नक्षत्रों के जाल से बचते हुए हम दूर निकल जाते।

उसके साथ चलते हुए अक्सर उसके भीतर डूब जाने से बचने के लिए मुझे किसी सितारे को फ़्लोटर की तरह इस्तेमाल करना पड़ता था । आखिर हम किसी तरह चाँद के जज़ीरे पर जा पहुँचते।

धीरे -धीरे बातों का रंग गाढ़ा होने लगता और मुझे ध्यान ही नहीं रहता कि कब मेरी आभासी देह से सारे बादल बह गए |

अचानक बोलते हुए वह रुकता और थोड़ी देर एकटक मुझे देखते रहने के बाद कहता 'तुम बहुत ख़ूबसूरत हो'

मेरा चेहरा कनपटियों तक लाल पड़ जाता। मेरी रूह देह के आभास को लिए बादलों में कूद पड़ती और वह भी अपने कहने से ही हिचकिचाया सा दूर हट जाता।

मैं धड़ाम से बिस्तर पर आ गिरती और ठीक यही समय सुबह फूटने का होता। आँख खुलती तो अपने आप को अपने कपड़ों के भीतर पा कर मैं निश्चिन्त होती। बाहर वह भी अपने चेहरे पर ठंडी गुलाबी आभा लिए मुस्कुराता खड़ा दिखता।

वह आसमान था। मेरी आँखों में ज़मीन ....

वह बादलों को ज़मीन में बोता और चाँद आसमान में उगा करता। हम नदियों, समुंदरों से दिन का शिकार किया करते फिर दिन को काट-काट कर धूप निकाली जाती ...

रात में चाँद पर धूप के उन टुकड़ों को सुखाया जाता यही हमारे सपनो की ख़ुराक़ थी।

सुबह मेरी आँखों का एक संस्कार, और रात उसकी आँखों की एक रस्म थी .....

अचानक वेंडर चाय लेकर आया तो तन्द्रा भंग हुई। मैंने पन्नों के बीच अपना हेयर पिन फँसाया और डायरी नीचे रख कर एक कप चाय ली। चाय पीते पीते ध्यान बाहर आसमान की ओर चला गया। ऐसा लगा मानों तरह तरह के रंग और आकारों को बनाकर आसमान किसी गूढ़ भाषा में संवाद स्थापित करने की कोशिश कर रहा हो।

जैसे डायरी का एक एक पन्ना उसने पढ़ रखा हो और उसपर मुझसे विमर्श करना चाहता हो।

अगले ही पल मुझे हँसी आ गई यह सोचकर की डायरी का असर कितनी जल्दी मुझपर हो गया है। लिखने वाले ने कितनी गहराई में डूब कर लिखा है। आखिर क्यों पड़ते है हम प्रेम में और कहाँ से चला आता है ये ख़ालीपन बेआवाज़।

चाय ख़त्म हो गई थी मैं ख़ाली प्याला कूड़ेदान में डाल आई और फिर लेट कर डायरी खोल ली।

ज़मीन हमें बाँटती थी और आसमान जोड़ता था, हमें उड़ना पसंद था। हवाओं को फेफड़ों में भरकर हम जब-तब इस आसमानी नदी में उतर जाते थे। तलछट में चाँद और सितारों से टकराते हुए अक्सर सोचते थे!

दुनियाँ जब भी ख़त्म होगी या तो अंतरिक्ष में बिखर जाएगी या उस ब्लैक होल में सिमटेगी जिसके भँवर में फँसने से हम कई बार बचे थे।

हमारी दो ज़ुबाने थी एक भाषा, समय की पर्ते प्याज़ सी थी संवाद हरी मिर्च से, मौन नमक सा गुज़ारा हो जाता था। चहकते बचपन और निराश समझदारी के बीच एक ठहरी हुई उम्र थी।

हमारे बीच प्रेम था .....
सारे मौसम तुम्हारी आवाज़ है ... धूप तुम्हारी लिपि ..
हवा तुम्हारा ब्रश है, पानी तुम्हारा रंग ...
पृथ्वी तुम्हारा फिगरेटिव चित्रकारी से भरा कैनवस है

लेकिन ये जो फलक पर तुम एब्स्ट्रेक्ट बनाते हो न उन्हें समझना बहुत मुश्किल हो जाता है ..

यार आसमान ! कभी आसान भी हो जाओ मेरे लिए ! तुम्हारा मौन बहुत दुरूह है ... मैं अकेले बोल-बोल कर थक गई हूँ ...

आजकल ऊँची जगहों पर जाने से डरने लगी हूँ ..... कि जाने कब तुम्हारा नीला मुझे खींच ले अपनी ओर ...

देर शाम जब तुम्हारा नीला रंग नज़र नहीं आया तो यूँ लगा मानों कोरी स्लेट रख दी गई हो सामने ....

इस अनंत स्लेट से वैसे ही डर गई हूँ , जैसे पहली बार स्कूल में उस छोटी स्लेट से डरी थी ...

उस दिन लड़खड़ाते हाथ अनजान थे अक्षरों से .. आज आँखे बांच नहीं पाती इस स्लेट पर लिखी अबूझ लिपि।

कैसे पढ़ूँ ?
क्या पढ़ूँ ?
क्या समझू ?

स्थिर परिभाषाएँ ढूँढने के इस दौर में एब्स्ट्रेक्ट जीवन की सबसे सटीक परिभाषा बन गई है ..

हाथों से पकड़कर हाथ किसी ने सिखाये थे उस समय अक्षर ...
आँखें कोई ऐसा अभ्यास जानती है क्या ? बताओ आसमान !

पता नहीं रात के कौन से पहर में और कब ये हुआ कि तुम मेरे पास थे ..

किनारे की रेत से उठकर नदी की गहराई में उतरने का आग्रह लिए ..

जाने कैसी ये नीली रोशनी उतरी है आँख में कि गहरे काले अँधेरे में भी तुम्हें देख पाती हूँ बिलकुल तुम जैसा, हाथ थाम कर उतर पड़ती हूँ पानी में ..

देर तक कभी हम एक दूसरे से तैरना सीखते है तो कभी एक दूसरे को डूबा देने की कोशिश करते है ..

थके हारे से जब लौटते है वापस ....

और तब तुम्हारे गीले कपड़ो की नमी से घबराया सूर्य चला आता है बाहर, और बिखेर देता है अपनी गर्म रश्मियाँ ... जरा सी रौशनी पड़ते ही लाल हो उठे चेहरों पर चहक उठती है चिड़िया ....

कोहरा है कि जैसे गहरी नींद सोई वसुंधरा की पीठ पर अटखेलियाँ करता आसमान की छाती के सफ़ेद बालो का जंगल !

आजकल लगने लगा है जैसे पेड़,पौधे, हवाएँ, झील, आसमान सब मुझसे बातें करने लगे है ..

सुबह की सैर के समय अचानक कोई पेड़, कोई झाड़ी रोक लेती है बाहें फैलाकर। मैं उसकी तरफ़ देख कर मुस्कुराती हूँ तो आसपास से गुज़रते लोग हैरत भरी नज़रों से देखते है मुझे, छोटे-छोटे रंगीन जंगली फूलों और तरह तरह की

खरपतवारों को देखती हूँ तो लगता है ये जंगल की आपस में की गई कानाफूसी है ...

पेड़ों द्वारा एक दूसरे के कानों में चुपके से कही गई खट्टी-मीठी बातें है अनेक रंगों में खिली हुई।

उदासियाँ जैसे खरपतवार है ..

आजकल फिर से वह बच्ची नज़र आने लगी है जो बहुत दिनों से जाने कहा गुम हो गई थी, वह उन जंगली पौधों के बीज अपनी पसीजी हुई हथेलियों में दबाये राह देख रही है उनके फूटने का मुस्कुराते हुए पूछती है मुझे ' पटाख़े वाला पौधा याद है ?

मैं उसके सवाल का जवाब न देकर उसके दोनों अपने हाथों में थामकर कहती हूँ " ख़ुशी का रंग आसमानी होता है " ..

वह बस मेरी ओर देखती रह जाती है , मैं उसके गालों को थपथपा कर आगे बढ़ जाती हूँ ....

लगता है जैसे मैं और तुम अक़बर पदमसी के किसी मेटास्केप का हिस्सा हो गए है ..

दो बिलकुल भिन्न किनारों के बीच किसी आसमानी नदी से बहते तुम ..

एक किनारे पर उजाला, एक किनारा अँधेरा !
कितना मुश्किल है ऐसे करवट-करवट जीना ...

पता नहीं यदि किसी रोज़ तुम एक भरपूर अंगड़ाई लेकर खड़े हो जाओ तो क्या होगा ?

उजाला उस ओर तक फ़ैल जाएगा ? या अँधेरा यहाँ तक रिस आएगा !

तुम्हें शिकायत है कि हम इस ओर वाले बार-बार तुम्हें चीरकर जाते है उस किनारे के रहस्यों को जानने !

शायद तुम्हें पता न हो या शायद तुम जान कर भी अनजान बने रहते हो ....

लेकिन उस किनारे के रहवासी भी हमारे बारे में जानने की पूरी उत्सुकता रखते है !

तभी तो रात गए तुम्हारी तलहटी में बैठ कर चाँद और सितारों की मशालें लिए जाने क्या ढूँढ़ते रहते है इस ओर ...

क्या तुम जानबूझकर बादलों के फ़ाहे ढ़ाक देते हो उनके निशानों पर ?

या तुम्हें ख़बर भी नहीं हो पाती ...कितनी गहरी नींद सोते हो यार आसमान !

सपने का कोई धागा, हर रोज़ जा उलझता है तुम्हारे आसमानी शर्ट से और हर रोज़ शर्ट का कोई बटन टूट कर आ गिरता है नींद में ..

हर रोज़ आँखों से निकलती है कोई दुआ, हर रोज़ तुम्हारी शर्ट पर खारा नमक फैल जाता है ...

हर रोज़ तुम ऐसे ही उदात्त बाहें फैलाये देखते हो मुझे, हर रोज़ मैं मुस्कुराकर करती हूँ एक ही सवाल ..

आख़िर तुम्हारे पास कितने आसमानी शर्ट है ?

मन का हीलियम भरा गुब्बारा भी कहा आसमान में जाकर अटक गया है ..

किसी तरह हाथ नहीं पहुँचता वहाँ तक ..

सारे रंगो को छोड़ आई हूँ पीछे, अब बस ये नीले का सफर है ...

मैं चाहूँ भी, तो अब तुम्हारी नीली उजास से बाहर नहीं जा पाऊँगी और तुम चाहकर भी अपना कोई कोना समेट नहीं सकते, हम यूँ ही रहेंगे साथ !

मैं यहाँ धरती से आवाज़ों की पतंगे तुम तक उड़ाती रहूंगी ...तुमसे एक मौन मुझ पर बरसता रहेगा ..

मैंने जान लिया कि तुम तक आने का रास्ता पिघलकर पानी हो जाने में है ...

तुम हवा से होकर मुझ तक आना ...
भीतर की ज़मीन पर हर रोज़ कुछ बदलने लगा है ... कभी कोई पहाड़ खड़ा हो जाता है, कभी नदी बहने लगती है .
कभी रेत के टिब्बे खड़े हो जाते है तो कभी फसल लहलहाने लगती है ...

कभी तेज़ बारिश की नमी उँगलियों के पोरों पर उतर आती है, कभी सूखे की पपड़ी होठों पर ..

कभी आँखों के सामने कोई चिता जलने लगती है कि तभी पीछे से किसी बच्चे की किलकारी मन बांध लेती है ..

बाहर की दुनिया से सौ गुना ज्यादा रफ़्तार से चलती है यह भीतर की दुनिया !

मैं सारे दृश्यों को समेट कर नजर ऊपर आसमान की तरफ उछाल देती हूँ ..

अगले ही पल उस पर भी रंगो और बादलों की एक दुनिया तेज़ी से चलने लगती है ..

आसमान अपने शर्ट पर चीटियों से रेंगते इन दृश्यों से जब थक जाता है तो इन सभी को थाम कर चाँद के कटोरे के नीचे दबा देता है ...उसके बाद न उसके आसपास कोई और दुनिया होती है न मेरे ...

बस वह समय हमारा होता है ...

तुम्हें बेहद क़रीब से देखा तो जाना कि चुनी हुई मसीहाई एक बोझिल एकांत देती है। रातों में तुम्हें नींद के लिए व्यथित देखती हूँ तो जी में आता है तुम्हारे हाथों से ले लूं वह आसमान जो तुम्हें दिनरात ओढ़े रहना पड़ता है ..
उसे हाथों में समेटते हुए मैं जान पाती हूँ कि तुम हमेशा मेरे कितने क़रीब रहे .. जैसे मेरे भीतर मेरा ही एक अंश।

रख देना चाहती हूँ अपनी आँखों से एक सुकून भर नींद निकालकर तुम्हारी आँखों में सोते हुए तुम किसी थके हुए ईश्वर का मिथक रचते हो ..तुम्हारा अकेलापन इसी ईश्वर का अकेलापन है मैं आसमान की काली पड़ चुकी चादर को उजला करने की कवायद में लगी रहती हूँ।

चाहती हूँ कि सुबह जब तुम्हारी नींद खुले तो तुम्हारे काँधो पर एक उजली हुई चादर हो और आँखों पर रात के सपनों से झरे मोगरे के फूल ....

प्रसूता रात चल पड़ती है तुम्हारे पीछे मंत्रमुग्ध ... फूँक-फूँक रखते कदम नए नवेले पिता तुम .. काँधे पर धरे शिशु चन्द्रमा
सद्य:जात !

जाने किसने किया है मौसम का रागों में अनुवाद ? तुमने अपनी आवाज़ को सुना है कभी ?

ऐसा लगता है मानों राग नन्द और हंसध्वनि को एक दूसरे में मिला दिया गया हो ... तुम्हारी आवाज़ पानी है .... पानी किस राग में बहता होगा कहो ? किस थाट की होंगी उसकी गहराइयाँ ?

तुम्हें सुनते हुए मुझे चंपा बावड़ी याद आती है ... कहते है पानी जितना पुराना होता है उसका चुम्बकीय प्रभाव उतना तीव्र। शायद तुम्हारी आवाज़ में किया होगा पानी ने अपने गहरे मौन का सबसे पहला तर्जुमा .....

बोलते-बोलते थक जाती हूँ इतना कि साँसे फूलने लगती है ...

मैं बस रुकने का सोचती हूँ और पीछे से आकर कोई टोकता है - 'आज इतनी चुप क्यों हो ? सब ठीक तो है ?'

मैं अचरज में पड़ जाती हूँ ... किसी ने नहीं सुना !

तब मैं किससे बात कर रही थी ! कौन सुन रहा था मुझे और मैं कह क्या रही थी ?

ध्यान से खुद को देखती हूँ तो लगता है जैसे मैं किसी के हाथों में रखी कोई क़िताब हूँ ... एक-एक पन्ने की तरह एक-एक दिन कोई पढता है मुझे अक्षरशः। फुट नोट्स की तरह दर्ज़ करता है रातें ..बुकमार्क्स की तरह स्मृतियाँ। उसकी नजर के घेरे बढ़ते जाते है मेरी उम्र के आसपास ..

किसी दिन जब उसके पढ़ने की गति तेज़ होती है तो बड़ी तेज़ी से गुज़र जाता है दिन ..और किसी दिन जब उसका पढ़ने का मन नहीं होता तब मुझे सुनाना पड़ता है पढ़-पढ़ कर अपने आप को ...

उस रोज़ दिन बहुत धीमी गति से बीतता है ...उस दिन थकान बहुत ज्यादा होती है ....
भागते-दौड़ते, पीछे छूट जाते दृश्यों के बीच, कभी भी आसमान को देखकर उसके छूट जाने का डर नहीं लगता था।

अनंत हो जाना इसी को कहते होंगे ...

प्रेम के नाम पर मची हुई तमाम चीख़ पुकार के बीच तुम्हे देखना कितना सुकून देता है आसमान !

जितना चुप .. उतना अटल .. उतना अथाह

तुम्हें जितनी बार छूती हूँ नीले के साथ घुलकर तुम्हारा ये चुप भी चला आता है मुझमे .. कुछ ही लोग ऐसे होते है, जिनके साथ चलते हुए शब्दों की ज़रूरत नहीं होती ..तुम्हारे आसमानी काँधो पर सिर टिकाते हुए मैंने सारे शब्द सपनों में रख दिए है और नींदे खो दी है कही ...तुम्हारे साथ रहते हुए मौन किसी अरदास सा बना रहता है मेरे आसपास ...समझ में नहीं आता क्या करूँ ? दिन कैसे निचाट सूना सा लगता है एक तुम्हारे नहीं होने से .. ऐसा भी नहीं था कि पूरा पूरा दिन हमने बातें की हो।

प्रेम केवल दिन -दिन-भर की बातें नहीं दिन -दिन-भर का अबोला भी है ...प्रेम साथ से कही ज्यादा घना एकांत है .... अनावृत हुए ग्रह, नक्षत्र अपनी कुपित दृष्टि से देखते है मुझे और घबराकर मुझसे रिस जाती है नीली उष्ण साँसें, नीली दृष्टि और हथेलियों में थमा नीला एकांत, तुम पर केवल मेरा ही तो अधिकार नहीं न आसमान ...मैं समझा लेती हूँ अपने आप को
अब जब तुम अपनी उम्र के आकाश पर लौट गए हो और मैं अपनी उम्र की ज़मीन पर उतर आई हूँ, वह समय अब भी मौज़ूद है वहाँ क्षितिज पर अपने अस्तित्व की मान्यता ढूँढ़ता ...

किसी पुरानी दोपहर से आती हुई तुम्हारी याद का चेहरा क्लांत है और तुम्हारे पाँवों पर बीते दिनों की थकान है।

रोज़ सोचती हूँ अब कुछ नहीं कहूँगी ... बस एक आख़री बात बता दो .... स्मृतियों का रंग हरा है ... विस्मृतियों का कौन सा होगा भला ?

लगता है जैसे मैं ऐसा कोई मुसाफ़िर हूँ जिससे दिशाओं ने अपनी ऊँगली छुड़ा ली हो ... और जिंदगी आँखों पर पट्टी बाँध कर ऐसी जगह छोड़ आई हो जहाँ समय के सारे रास्ते एक दूसरे को काटते हुए जाने कहा-कहा तक चले गए है अंतहीन ..कोई सिरा तो मिले ...

चुप के दो शीशों के बीच, हवा में सिहरता हुआ ...अलगनी पर अब ख़ामोश टंगा रहता है आसमानी शर्ट ... हम दोनों एक दूसरे से कुछ नहीं कहते पर बस आते जाते आसमानी शर्ट की जेब ज़रूर टटोल लेते है।

क्या पता कोई संदेश ही मिल जाए किसी को किसी का ! जब कोई नियम नहीं हो तब अनियम के सिद्धांत चलते है। हम तब भी बंधे हुए होते है जब कोई बंधन न हो .....

उन दिनों भूरे और आसमानी का कॉम्बिनेशन इन था .. अक्सर शाम को मैं बादलों के फाहे अपनी अदरक वाली चाय में डुबोकर तुम्हारे आसमानी शर्ट पर डिज़ाइन बनाया करती और तुम अपनी शर्ट को भूरा होते देख हँसा करते थे ....

चाँद तुम्हारी हँसी हुआ करता था उन दिनों ..

आजकल मैं दिन को तकिये के नीचे दबाती हूँ और रात को चादर की तरह ओढ़ कर पॉली हॉउस में तब्दील हो जाती हूँ ... नींद के पौधें उगाती हूँ .... किसी शाम ने ऐसे आकार लिया ...कि लगा जैसे आहिस्ता-आहिस्ता सीमेंट कॉन्क्रीट की कोई दीवार खड़ी हो रही हो मेरे और तुम्हारे बीच ! जानती हूँ अब ये दीवार यूँ ही रहेगी एक मौसम के बीत जाने तक ... फिर उसके बाद तुम एक नई अजनबी सी आभा में दिखोगे ...

शायद मुझे भी तुम्हें देखने के लिए आँखों पर हथेलियों की ओट बनानी पड़े ...

चौंधियाता हुआ अजनबीपन अपने पूरे शोरगुल के साथ पसर जाएगा हमारे बीच .. बहाने को एक भीड़ होगी बिछड़ जाने के लिए ..... और फिर धीमे-धीमे चल पड़ते है शब्द भी किसी एकाकी रास्ते पर, त्याग देते है आवाज़ों के वस्त्र, पहनकर चीवर मौन का !

मार्ग में छूटती जाती है मात्राएँ, चिन्ह, अलंकार .. कानों में ठहर जाते है बादल और थक कर कही पीछे छूट जाता है मालकौंस ... कोई शाम ऐसे दिखाई पड़ती है मानों नीले काँधों पर खुल कर ढलक आये हो किसी के काले घने बाल ...आसमानी शर्ट पर रह-रहकर ये जो काजल के दाग़ उभरते है आजकल, इनके आगे दुनियाँ की तमाम स्याहियाँ फ़ीकी है ... कभी क्रोध कभी क्षमा, कभी अपमान कभी प्रेम, कभी तड़प कभी आँसू ..... कितना सब एकसाथ !

शब्द होंठो की तरफ़ चलना शुरू करते है लेकिन बीच रास्ते से कलम की राह थाम लेते है .. क़ाग़ज़ बेसब्री से राह देखता है ..पर तब तक शब्द फिर अपना मन बदलकर आँखों की मुँडेर तक पहुँच चुके होते है ... लिखना बेमानी सा लगने लगा है अब ... बहुत देर तक बाहर के साथ-साथ भीतर भी कुछ उमड़ता है, घुमड़ता है, बरसता है ...और ज़रा बारिश के रुकते ही आसमान पर पँछी ऐसे फड़फड़ा कर उड़ते है मानों मौन अंतरालों के कारागृहों से छूटे शब्द हो ..

मैंने तुम्हारी आवाज़ को पानी कहा और एक लम्बा रेगिस्तान लिख लिया अपनी हथेली पर अब मेरे आसपास आँधियों से उड़ने है मेरे ही शब्द, रचते है आभास।

उत्तप्त बाँहों के मरुथल में मृगतृष्णा सा मुझे ही छलता है मेरा समर्पण ... मैं अपनी साँसे उठाये किसी और के पाँवों पर चलती हूँ थक कर ज़रा रूकती हूँ एक नीले रंग पर, विचरती हूँ उसके विशाल हृदय में अनंत तक .... गुज़रती हूँ कितनी ही आकाशगंगाओं से, कितने ही सौरमंडलो में भटकती हुई, बनती हूँ ग्रहण कितने ही ग्रहो का अजाने में !
और इस बीच चुप्पियों की एक सुई बिना सिर ऊपर उठाये लगातार बुनती है उम्र की चादर पर दिनों का कशीदा।

प्रेम की ये कैसी पहेली है आसमान ?

मेरी नींद पर चलता है किसी और का स्वप्न ! तुम्हारी आँखों में आकर ठहर जाती है सारी पृथ्वी की रात ...

आगे और पढ़ने की हिम्मत मुझमें नहीं थी। आँखों से गर्म आँसू मेरे गालों पर ढलक आये थे। मैंने डायरी को बंद किया और आँखे मूँद ली। डायरी क्या थी एक विवर था गहरा, जिसमें मन बस धँसता जाता था। अकेलापन इतना अथाह भी हो सकता है, कभी सोचा नहीं था। उस लिखे में एक अजानी उदासी थी और उस उदासी में मोनालिसा की मुस्कराहट।

कासनी का एक सूखा फूल मैंने हाथ में उठा लिया। क्या लिखने वाली सिज़ोफ्रेनिक थी ? यदि ऐसा था तो क्या ये सब मतिभ्रम की अवस्था में लिखा गया ! इतना सुन्दर !

यह भी हो सकता है कि सिज़ोफ्रेनिक न होकर वह एक बेइंतेहा अकेलेपन की अवस्था में हो।

ये नीला आसमान है या उसके अकेलेपन का कोई आकार ? एक ठहरी हुई नीली उदासी की भाप से बना बादल !

मैंने डायरी के सबसे पिछले पन्ने को खोला तो एक पता लिखा हुआ था। पता उसी शहर का था जिस शहर मैं जा रही थी। तो क्या वह मंज़िल से पहले ही उतर गई ? जब पहुँचना ही नहीं था तो भला क्यों चढ़ी होगी ट्रेन में ? क्या इस पते पर उसका ही घर होगा ? क्या यह डायरी वह जानबूझकर छोड़ गई थी ? क्या उसे पता था कि उसका लिखा हुआ किसी को भी इतना उद्विग्न कर देगा कि वह उसकी तलाश करने लगे ? क्या वह चाहती थी कि कोई उसे ढूँढ निकाले ?

जैसे जाने कितने ही सवाल मुझे मथने लगे। सारी रात करवट बदलते हुए गुज़री। दूसरे दिन पहुँचते ही मैंने अपना सामान हॉस्टल में रखा और ऑटो लेकर डायरी में लिखे पते की तलाश में निकल पड़ी।

एक दोमज़िला मकान था जिसके आँगन में एक जंगल उग आया था। मैं ऑटोवाले को रुकने का इशारा कर गेट खोलकर भीतर पहुँची । जर्जर दीवारों से नीला पलस्तर झड़ रहा था। टूटी खिड़कियों पर कबूतर बैठे थे जिनकी गुटरगूँ आवाज़ माहौल को और भी वीरान कर रही थी।

भीतर झाँकने की हिम्मत मुझमे नहीं थी यदि झाँकती तो हो सकता है कि उसकी अनुपस्थिति की कील पर टँगी शायद उसकी कोई तस्वीर ही दिख जाती। मैं खुले बरामदे में बनी सीढ़ियों से ऊपर चली गई। छत तमाम जंगली खरपतवार से भरी हुई थी। घास के बीच मौजूद केना पर नीले फूल खिले हुए था, मकरा, मोथा, पथरचटा, कांस ने उसके उजाड़ को भी एक खूबसूरत जंगली बसाहट में बदल दिया था और थे उसकी डायरी में मिले कासनी के फूल।

छत के एक तरफ लकड़ी का एक ज़र्ज़र झूला था जो हवा की लहरों के साथ मंद मंद डोल रहा था। ऐसे लगा जैसे वह आसमान की और पेंग लगा रहा हो। दूर बिजली के तारों पर एक बदरंग कमीज़ तार तार होकर झूल रही थी मैंने सोचा शायद यही होगी वह शर्ट जो कभी आसमानी रही होगी ।एक नीला भय

अचानक मुझ पर तारी हो गया और मैं वहाँ से उलटे पाँव भागी।

मुझे लगा जैसे मेरे पाँव आगे बढ़ रहे है लेकिन मैं वही रह गई हूँ। जिस हवा को काटकर मैं आगे बढ़ती जा रही हूँ वहाँ कुछ भरता जा रहा था, क्या मुझे पता नहीं।

लेकिन ऑटो में बैठकर लौटते हुए मुझे लग रहा था जैसे आसमान मेरे साथ साथ दौड़ रहा है।

***

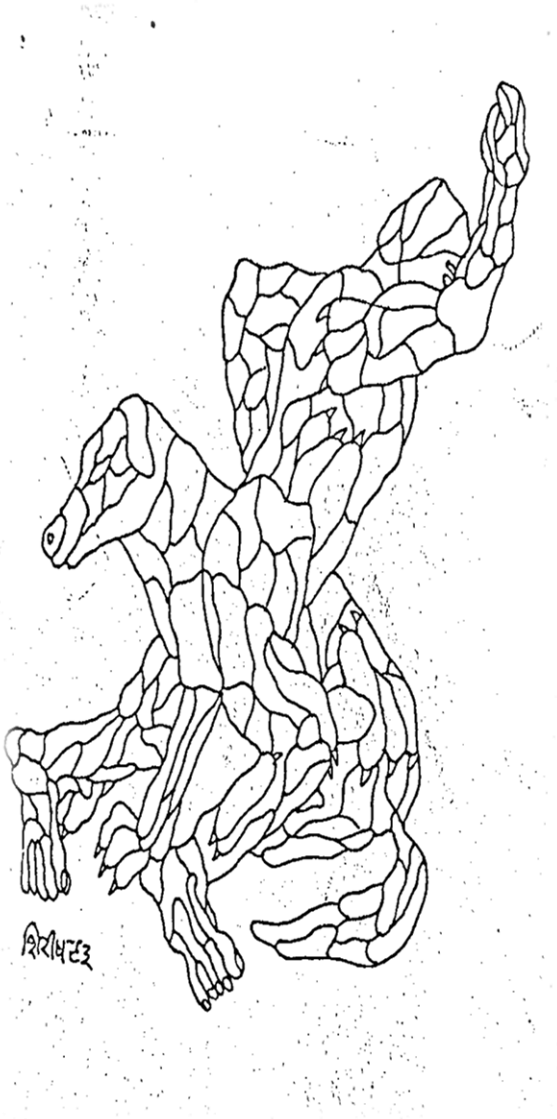

अनामिका अनु की दो कहानियाँ

अनामिका अनु हिन्दी की सुपरिचित कवि हैं। इधर उन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं। हंस में पूर्वप्रकाशित उनकी दो कहानियाँ हम अनुनाद पर लगा रहे हैं। इन कहानियों की भाषा और शिल्प में कहीं यह भी दर्ज़ है कि ये एक कवि की कहानियां हैं।

काली कमीज़ और काला कुर्ता

वह हर दिन संपादकीय लिखने के बाद थोड़ी देर के लिए चश्मे को खोलकर पास की टेबुल पर रख देती है। मोबाइल में बेंजामिन की सेव करके रखी गई तस्वीर को देखती है और लगातार उसकी आँखों से आँसू बहता रहता है। अचानक से कोई फ़ोन आ जाता है या कोई दरवाज़े पर दस्तक देता है।वह तनकर कुर्सी पर बैठ जाती है। झट से हथेलियों से आँसू को पोंछती है और टीसू को हाथ में पकड़े कहती है :
कम इन प्लीज़।

वह रोज़ समाचार बताता है। दुनिया भर के समाचार सुनाते वक़्त वह ख़ुद के दिले-हाल से आजकल बेख़बर नहीं हो पाता है।

समाचार पढ़कर निकलता है तो न्यूज़ रूम में घुसते ही बहुत-सी आँखें पूछती हैं -
तुम आजकल काली कमीज़ नहीं पहनते?

वह जब इस प्रश्न को अनसुना कर आगे बढ़ने की कोशिश करता है तब उसके मन में रेशम के धागे लिपट जाते हैं। हर बढ़ते कदम के साथ ,वे धागे पहले से कहीं अधिक टाइट और सख़्त हुए जाते हैं। मन हुक-हुक कर ,सुबक-सुबक कर टहक उठता है। वह बैग उठाकर बाहर आता है। एक सिगरेट धुँकता है और सीधे कार में बैठ जाता है।

उस एक रात के बाद उसकी काली कमीज़ कहीं चली गई।

क्या वह रेचल के पास चली गई। उसने उसे अपना काला कुर्ता समझकर अपने कपड़ों में रख लिया होगा।

रेचल हर दिन प्राइम टाइम देखने के लिए टी वी खोलती है। बेंजामिन की खड़ी नाक,चाँदी बाल ,चाँद हँसी और कलम को थामे सुंदर उंगलियाँ उसके जेहन में घुमड़-घुमड़ कर शोर मचाती हैं।बेंजामिन समाचार कहता जाता है। रेचल कुछ नहीं सुनती। बेंजामिन सबकुछ कहता है देश की ख़बरें,दुनिया की ख़बरें,हर तरह की बातें। रेचल प्राइम टाइम ख़त्म होते ही टी वी बन्द कर देती है। फिर हर रात वह यही सोचते हुए गुज़ार देती है कि बेंजामिन ने काली कमीज़ क्यों नहीं पहनी?

रेचल अपना काला कुर्ता खोज-खोजकर बेहद परेशान हैं। ज़रूर ही वह बेंजामिन की काली कमीज़ के साथ चली गई होगी।

बेंजामिन रेचल के संपादकीय और सोशल प्रोफाइल पर सूक्ष्म नज़र रखता है। वह किस मंच पर क्या बोल रही है और क्यों बोल रही है? से ज़्यादा वह इस बात से परेशान हैं कि रेचल ने काला कुर्ता पहनना क्यों छोड़ दिया?

रेचल सोचती है बेंजामिन ने उससे प्रेम तोड़ लिया। वह उसके बारे में नहीं सोचता होगा। बेंजामिन समझता है कि रेचल ने उसे छोड़ दिया वह उसके बारे में नहीं सोचती होगी।

दोनों नहीं जानते प्रेम से स्थाई कुछ भी नहीं, न यह ब्रह्मांड, न इस जड़-चेतन की उपस्थिति, न ही समय की व्याप्ति। जिससे मन जुड़ जाए उससे जुड़ा ही रहता है। हम आदतानुसार इस सच को नकारने के लिए सभी प्रकार के स्थूल प्रयासों में लगे रहते हैं। हम एक दूसरे से पहले की तरह बातें करना छोड़ देते हैं। हमें लगता है जो बात करने की आदत लग गई तो घर वालों को ख़बर हो जाएगी फिर महाभारत... क्योंकि हम किसी न किसी के कुछ न कुछ तो लगते ही है न? इस डर से हम बात करना छोड़ देते हैं।जब बात करने का मन करे तो छटपटाहट महसूस होती है। फिर रेचल सोचती है : कितना निर्दयी है मुझसे बातें नहीं कर रहा। कम से कम पूछ तो ले कि मैं कैसी हूँ?

बेंजामिन सोचता है : कल तक हर दिन इतनी सारी बातें, इतना प्यार ,आज एक बार हाई (Hi)भी नहीं कहा। कोई एक दिन में ऐसे कैसे बदल सकता है?

दोनों के प्रश्न गुज़रते दिनों के साथ अदला-बदली कर लेते हैं। वही प्रश्न रेचल के मन में उठता है जो प्रश्न कभी बेंजामिन के मन में उठता था। यह उसी सघन प्रेम की छवियां हैं जो दोनों में एक ही है। यह वही भावुकता और संवेदना है जो दोनों में एक-सी हैं। दोनों भिन्न कहाँ हैं ? एक ही तो हैं। प्रेम की यही तो महिमा है,रूह की ऐसी ऐंट-फेंट कर देता है कि पता ही न चले एक-दूसरे का अंश कहाँ है, एकरंगा कर देता है सबकुछ। दोनों के मन, चित्त, समझ और संवेदना को। दोनों का चित्त एक- सा हो जाता है। जो प्रश्न रेचल के मन में उठते थे, उन्हीं प्रश्नों से आज बेंजामिन का मन बहुत भारी है।

प्रेमियों के बीच होती है प्रश्नों की अदला-बदली। प्रेमियों के बीच होती है चिंताओं की अदला-बदली।

प्रेमियों के बीच होती है हुक की अदला- बदली।
प्रेमियों के बीच जो स्थिर रहता है, वह होता है प्रेम।

साझापन बचा रह जाता है
एक ही बारिश में दो जगहों पर भीगते हुए
एक ही आकाश तले ,एक ही समय आकाश ताकते हुए
एक ही समय एक दूसरे की खैरियत मांगते हुए
एक ही समय चाय पीते हुए
एक ही समय में अलग-अलग जगहों पर उदास होने से...

रेचल का मन बेंजामिन से कहता है:
"ऐसा करो तुम आकाश ताकना छोड़ दो
मैं बारिश में भीगना छोड़ देती हूँ
तुम उदास होना छोड़ दो
मैं चाय पीना छोड़ देती हूँ
मैं और तुम एक साथ दुआ और खैरियत मांगना छोड़ देते हैं
कुछ भी साझा नहीं बचेगा हम दोनों बीच"

दोनों आपस में अब भी बातें कर सकते तो यह उदासी और यह हुक उनके हिस्से कभी नहीं आती मगर उन्हें डर लगता है परिवार से, समाज से, धर्म-देवता से और सबसे ज़्यादा किसी बिगाड़ से।

वे प्रेम की रक्षा करना नहीं जानते। उसका गोपन-संपादन और संतुष्ट होकर पृथ्वी पर खुश रह पाने का सूत्र उन्हें नहीं पता ...

वह ठुड्डी पर उंगलियाँ रखकर,हथेली फैलाकर बहुत-सी बातें कहता है, वह साक्षात्कार लेता है, राजनीति पर बोलता है। वह कई रंग की फार्मल कमीज़ पहनता है। कभी आसमानी ,कभी सफेद, कभी हल्की बैंगनी,कभी राख रंग की,कभी गहरी नीली और आसमानी पर नीले रंग की चेक वाली भी, कभी कोट,कभी शेरवानी, कभी-कभी जैकेट और बंडी भी । उसने भूरी कमीज़ भी पहनी जिस पर धारियां थी। मगर प्रश्न फिर भी वही कि उसने काली कमीज़ क्यों नहीं पहनी?

वह आज भी तेजतर्रार संपादक और सोशल एक्टिविस्ट हैं। वह साड़ी पहनती हैं,सलवार कमीज़ भी,सभी रंगों की साड़ियां,सभी रंगों के सलवार और कुर्ते भी। वह बच्चों के अपहरण और उनके अंगों की तस्करी पर सरकार को घेरती है। वह बाल-वेश्यावृत्ति में झोंके गये बच्चियों के लिए पुलिस से भिड़ंत करती है। वह गली-गली में रतजग्गे कर फुटपाथ पर रह रहे लोगों के सुख दुःख की टोह लेती है उन तक मदद पहुँचाती है। वह सबकुछ करती है ,क्या वह बेंजामिन को याद करती है? वह आख़िर क्यों नहीं पहनती काला कुर्ता?

बेंजामिन के अलमीरे के नीचे की टाइल के नीचे एक काठ का डिब्बा है जिसे वह मध्यरात्रि में खोलता है और उससे काला कुर्ता निकालकर पहन लेता है। वह आईने में खुद को देखता है और भोकार पारकर रोता है। नि:शब्द ,मूक रूदन, मुँह फाड़कर रोता है मगर बिना आवाज़ निकाले।

रेचल की किताबों के बीच एक बड़ा सा डिब्बा है जिसके भीतरी तह के भीतर एक काग़ज़ का थैला है। सुनसान समय में वह उस थैले से काली कमीज़ निकालकर पहन लेती है।

न वह कुर्ता रेचल का है जिसे बेंजामिन ने एकांत में पहन रखा है फिर उस कुर्ते से रेचल के देह की गंध क्यों आ रही है?

न वह कमीज़ बेंजामिन की है जिसे रेचल ने विरह के एकांत में जी सकने के लिए पहन रखा है फिर उस कमीज़ से बेंजामिन के डियो की गंध क्यों आ रही है।

समय के पास उत्तर है,उसने देखा है :
रेचल ने अपने कुर्ते को कतरकर कमीज़ बना लिया। उस कुर्ते से बेंजामिन के डियो की गंध आ रही थी जब-जब वह गंध समय के साथ हल्की होती गई तो रेचल ने बाज़ार से बिल्कुल वही डियो ख़रीदीं और कुर्ते पर वह समय-समय पर डियो छिड़कती रहती ताकि उसमें वह बेंजामिन वाली गंध बनी रहे। जितना जतन गंध को बचाने,कुर्ते को छिपाने में लगाती है। उससे बहुत कम जतन से वह उस अद्भुत रिश्ते को बचा सकती थी। तब शायद वह बेचैनी और पागलपन की जगह पर शांत और सुकून की ज़िंदगी जी सकती थी।

समय के पास उत्तर है,उसने देखा है :
बेंजामिन ने अपने कमीज़ में काले कपड़े जोड़कर उसे कुर्ता बना लिया है। जिस जतन से उसने पहली बार अपने जीवन में सूई से सिलाई की और जिस जतन वह उस कुर्ते को छिपाकर रखता है उससे कम कोशिश से ही वह उस रिश्ते को बरकरार रख सकता था जिसे प्रेम की जगह और भरोसे का आश्वासन था। मगर नहीं दोनों परेशान, पागल और बिना आवाज़ निकाले फफक-फफक कर रोते रहते हैं। कभी झरने के नीचे, कभी मसालों के डिब्बों को पकड़कर ,कभी कार चलाते,कभी वॉश रूम में...

हमारा डर ,हमारी शंका कितने दुःख को निमंत्रण देती है मगर चाहकर भी प्रेम की विदाई नहीं कर पातीं।

जब रेचल के पति पूछते हैं:
मैडम !आजकल आप अपना फेवरेट कुर्ता नहीं पहनती?
तो वह धीमे से कहती हैं :
मुन्नार में खो गई।

जब बेंजामिन की पत्नी पूछती है:
साहब की काली कमीज़ कहाँ गई?
तो बेंजामिन कहता है:
मुन्नार में खो गई।

खोया न तो रेचल का कुर्ता,
खोई न तो बेंजामिन की कमीज़,

खोया तो प्रेम भी नहीं,
जो जबरदस्ती भुलाने की कोशिश की गई
वह एक-दूसरे की सुंदर उपस्थिति थी

बीतते समय के साथ एकांत में बेंजामिन काले कुर्ते पर बड़ी लाल बिंदी और काली विग लगाने लगा। आईने में खुद को ऐसे रूप में देखकर कभी रोता और कभी जोर-जोर से हँसता है।
बीतते समय के साथ रेचल ने बाल कटवाकर बेंजामिन की तरह कर लिए और उसी की तरह के कपड़े पहनने लगी।

दो सामान्य लोगों को असामान्य बनते देखकर समय पूछता है:
क्या प्रेम को बचा पाना इससे अधिक मुश्किल था...

दूर से आवाज़ आ रही है :
न्यूज़ रूम से मैं बेंजामिन जैकब !
आज के एडिटोरियल में मैं रेचल नेकपाल!
***

येनपक कथा : बूढ़ा छातेवाला

बारिश से ठीक पहले वह आता था। डगमग-डगमग करते, संभलते-संभालते दर्जनों छातें पीठ पर लादे। वही एक था जो इतने रंगबिरंगे बांस के ,पत्तों के छातें बनाता और बेचता था। वह छातें सिर्फ़ और सिर्फ़ स्त्रियों को बेचता था। छतरियों के बंडल के साथ वह एक झोला भी अपने दायें कंधे पर लटकाये रहता था और जो स्त्री उसका मन मोह लेती उसे वह छतरी के साथ पत्थर के चिकने सुंदर खिलौने देकर जाता था।

जिन्हें भी वे खिलौने मिलें उन्हें सुंदर स्वस्थ शिशु सालभर के भीतर प्राप्त हुएं। उसने कभी अविवाहित युवतियों को नहीं बेची अपनी छतरियाँ, न ही उन्हें कभी उपहार में दिए खिलौने।

छाते को पहाड़, झील और जंगल वाले येनपक कहते थें और उस छोटे से प्यारे आदमी को येनपक वाला जादूगर। जादूगर इसलिए कि हर स्त्री के मन में वह बस सा गया था , सबके पति 'येनपक वाला' कहकर अपनी-अपनी पत्नियों से मनोहार करते थे।

स्त्रियां बारिश के उतरने से पहले उसका इंतज़ार शुरू कर देती थीं। कितने भी पैसै दे दो ,वह पुरूषों को छाते नहीं बेचता था। वह कहता था :भीम देव बारिश लाते हैं और स्त्रियों से बहुत प्रेम करते हैं। वे बड़े नटखट हैं और उन्हें स्त्रियों से फुहारों वाली ठिठोली करना ख़ूब भाता है। स्त्रियों के खरीदे छाते टूट न जाएं, पुराने न हो जाएं इस चिंता में भीम ज़रूरत से ज्यादा बारिश नहीं करते और जंगल-पर्वत-पहाड़ डूबने से बच जाते हैं।

पुरुषों की खरीदी चीज़ों का कोई मोल नहीं भीम के सामने। पुरुष का वश चले तो वे अपनी पत्नियों को भी जुए की दांव पर लगा दें फिर दूसरी चीजों को वे कितना महत्व देंगे, ज़रा सोचो?

स्त्री जतन से बुनती या खरीदती हैं छाता। वे बचा-बचा कर रखती हैं एक-एक आना और पैसे जोड़-जोड़ कर खरीदती हैं छाता। वह छाता जो धूप और बारिश से रक्षा करता है उनकी, उनके बच्चों की और उनके गोद में बैठे मेमनों और पंक्षियों की।

लोकतक झील के पास था उस बूढ़े छाते वाले का झोपड़ा था। झील के किनारे चांदनी रात में बैठकर वह पुलही बजाता था। इतना सुंदर और मधुर की अंडे धीरे-धीरे फूटते और नन्हें सुंदर चूज़े निकलकर झांकने लगते, द्रौपदी माला की कलियां चटक उठती, बांस के फूल मद्धम ताल पर झरते ...
झील उसकी मां थी और बांस के वन उसके पिता। किसी चांदनी रात में एक सुंदर टोकरी में बहता हुआ वह बांस के वन से टकराया और सुबह एक बुझी आंखों वाली सुंदर स्त्री उसे उठाकर ले आई। भात के माड़ को पिला पिला कर उसे बड़ा किया।

एक बार उसे एक सुनहरी बाल वाली लड़की से प्रेम हो गया। पूरे इलाके में बस उसके ही बाल सुनहरे थे। लोग कहते हैं उसकी परदादी की मां अंग्रेज़ थी जिसके बाल सुनहरे थें। उस कबीले में पहली बार किसी ऐसी लड़की का जन्म हुआ था जिसके बाल सुनहरे थें। वह सबके आंखों में भगजोगनी सी भुकभुकाती रहती थी।

एक दिन वह सुनहरे बालों वाली लड़की गायब हो गई। लड़की क्या गायब हुई, लोग कहते हैं पुलही वाला वैरागी हो गया और छाते बुनने और बेचने लगा।

राग- रौशनी से विराग-छाया तक की दूरी नाप चुका वह बूढ़ा वैरागी ...

वैरागी कैसा?
उसे हर स्त्री से प्रेम था
हर स्त्री को उससे छाया मोलना पसंद था
हर स्त्री को उसके नाम की उलाहना सुनना पसंद था
हर स्त्री बारिश के आने से पहले उससे मिलना चाहती थी
हर स्त्री पिछली बारिश से अब तक के किस्से उसे सुनाना चाहती थी और अपने जन्मे शिशु को उसे दिखाना चाहती थी।
वह हर बार एक ही स्त्री को प्रस्तर के खिलौने देता था वह उस मौसम की मां होती थी जो अगले वर्ष इस मौसम के फिर से आने के ठीक पहले तक लोरियां गाकर रात गुजारती थी।

वह साठ वर्षों से हर साल बारिश से पहले आता है। वह वृद्ध हो चुका है मगर पहले से ज़्यादा सुंदर और निश्चल...

एक दिन बारिश से ठीक पहले एक और छाते वाला आया। वह बेहद सुंदर और युवा था। सभी स्त्रियां उसे घेरकर खड़ी हो गई। उसके पास भी झोले में थी कई मूर्तियां और गहने। ढेर सारे खुडंगयाई (कंगन) और खुबोमयाई (पायल) ।उसने ख़ूब सारे छाते बेचे और कई स्त्रियों को दी मूर्तियाँ और गहने । वह बहुत मनमोहिनी बातें करता था और उसकी मूर्तियां बहुत चिकनी और सुघड़ थीं।

अब किसी को बूढ़े छाते वाली की प्रतीक्षा नहीं थी। एक दिन पहाड़ियों से उतरकर बूढ़ा छाते वाला आया। उसने आवाज़ लगाई, कोई नहीं आया। सबके पास नई छतरी थी ,सबों ने उसे अनदेखा और अनसुना कर दिया। वह लौटकर देर रात झील के पास गया। उसने भोर होने तक लगातार पुलही बजाई। आज की पुलही में कौन सा दर्द था कि अमावस्या की रात में में पूर्ण चांद निकल आया। झील में असंख्य सुनहरी मछलियां तैर उठीं। लगा बूढ़े छाते वाले की प्रेमिका के सुनहरे बाल चारो तरफ तैर रहे हैं। झील झिलमिला उठी।

भोर में भयंकर बारिश हुई । स्त्रियों ने अपने नये छाते निकाले वे घर से बाहर आई और छाते धीरे-धीरे गल ग ए।वे बर्फ के छाते थें। स्त्रियाँ दौड़कर अपने नये खिलोने देखने गई। वे चिकने सुंदर खिलोने गल चुके थें, वे भी बर्फ के निकले। वह नया छाते वाला काला जादूगर था...
साल भर का जोड़ा गया पाई पाई बर्बाद...

स्त्रियां मूसलाधार बारिश में भीगती रहीं और अचानक सब पुलही की आवाज़ की ओर बढ़ने लगीं ,वे धीरे-धीरे झील की तरफ़ मुड़ीं। जैसे-जैसे वे झील की तरफ़ बढ़ती जाती थीं वैसे-वैसे ही बारिश और तेज होती जाती थी। जब वे झील के पास गईं तो देखा वहां सैकड़ों सुंदर छतरियां पड़ी थी। झील से पुलही की आवाज़ आ रही थी। दूर-दूर तक कोई नहीं था। स्त्रियों ने एक-एक छतरियां उठा ली और गांव लौट आईं। ये उनका पहला बिना मोल चुकाया गया छाता था और बूढ़े छतरी वाले के द्वारा उन्हें मिला अंतिम छाता भी।

वे छाता ओढ़कर घर की तरफ बढ़ी ,बारिश धीमी होती गई। पुलही की आवाज़ गुम होती चली गई। स्त्रियां घर आकर बूढ़े छाते वाले के दिए खिलौने तलाशने लगी ,वे खिलौने भी उन्हें कहीं नहीं मिले। सब के सब विलुप्त हो गये थें। सब स्त्रियां आपस में एक दूसरे से हफ़्ते भर पूछती रही :
उनके खिलौने मिले कि नहीं?
किसी को कोई खिलौना नहीं मिला।

एक दिन गोधूली की बेला में पुराने बरगद के पेड़ के नीचे बैठकर स्त्रियां खिलौने के लुप्त हो जाने के रहस्यों पर चर्चा कर रही थीं कि उनकी नज़र उनके खेलते कूदते बच्चों पर पड़ी। उन्हें उनके खिलौने मिले गये,वास्तव में वे कभी नहीं खोएं थे...सभी स्त्रियां एकसाथ मुस्कुरा उठीं।

बूढ़ा छाते वाला झील हो गया ,उसका देह झील का पानी। सुनहरी बालों वाली लड़की की हर कोशिका मछली बन गई जो उम्र भर झील में समायी रही।

छाते ,गोबर छत्ते बन गए और मूर्तियां बांस-वन के जीव। स्त्रियों के आंखों से निकली आंसू की लरी कोप्पू के फूल...

आज भी बारिश से पहले झील के चारों तरफ़ गोबर छत्ते उग आते हैं जिसे हर विवाहित स्त्री तोड़ कर लाती है और अपने घर में खिलौनों की तरह सजा देती हैं।

उस गांव के लोगों ने कभी भी झील में मछलियां नहीं पकड़ी । बूढ़े छाते वाले की याद में बारिश के आने से ठीक पहले वे लोग रंग बिरंगे फूल झील में बहा आते हैं ।तब उन सभी लोगों के हाथों में छतरियाँ होती हैं और स्त्रियों की आंखों में होता है आंसू...
***

काव्यात्मक आलोचना के बोधात्मक प्रतिमान

प्रचण्ड प्रवीर

पिछले दिनों मेरे किसी मित्र ने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के हवाले से कहा कि गुरुदेव का मत था कि यदि कोई उनसे कविता का अर्थ पूछे तो वे हतप्रभ रह जाते हैं। यह कुछ ऐसा है जैसे किसी पुष्प का अर्थ पूछना, जबकि उसका सौरभ ही वास्तविक आनन्द है। वही अभीष्ट है।

मैंने इस वक्तव्य के मूल स्रोत को ढूँढने की कोशिश की, किन्तु अभी तक सफलता नहीं मिली है। बहरहाल, इसी को आगे बढ़ाते हैं तो हमारे मित्र का कहना है कि कविता में भी अर्थ ढूँढना बेमानी है। इसके विवेचन में उन्होंने प्रसिद्ध फ्रांसिसी चित्रकार मार्सेल ड्यूशैम्प (१८८७-१९६८) की कलाकृति 'झरना-मूत्रदान' (https://en.wikipedia.org/wiki/Fountain_(Duchamp)) का उल्लेख किया। सन् १९१७ में एक कला प्रदर्शनी में मार्सेल ड्यूशैम्प ने बना-बनाया मूत्रदान रखा और कहा कि कलाकार दैनिक जीवन में प्रयोग आने वाली वस्तुओं को अपनी चुनाव से कला की गरिमा प्रदान कर सकता है। बाद में यह बनी-बनायी कलाकृति बहुत से कलाकारों के लिए चिन्तन-मनन और प्रेरणा का कारण बनी रही। ऐसे ही प्रयासों के फलस्वरूप कहा जा सकता है कि आज के समय में कला दृष्टि रखने वाले 'क्युरेटर' या संग्रहकर्ता को भी कला सर्जक जितना सम्मान मिलता है।

यहाँ सोचने वाली बात है कि अगर ड्यूशैम्प के बजाय किसी सोलह साल के लड़के ने कला प्रदर्शनी में ऐसा कुछ रखा होता तो क्या उसे भी ऐसा सम्मान मिलता? शायद उसे दण्ड दे कर भगा दिया जाता। अमरीकी कलाकार एण्डी वार्हॉल(१९२८-१९८७) के ब्रिलो बॉक्स(https://artmuseum.princeton.edu/collections/objects/33816) में साधारण पैकेज वाले डब्बे हैं, जो बेहद चर्चित रहें। मैं समझता हूँ कि मार्सेल ड्यूशैम्प और एण्डी वार्होल कला के सौन्दर्य में केवल 'प्रिय' की अवधारणा को भी चुनौती देना चाहते थे और साथ ही अनुकरण की सम्यकता व सीमितता को रेखांकित करना चाहते हैं। कुछ इस तरह जैसे कि सत्रहवीं सदी के महान स्पेनी उपन्यास 'डॉन किशोते' के दूसरे खण्ड में राज्य के प्रलोभन में डॉन किशोते का साथ देने वाले 'सैंचो पंजा' को सचमुच का राज्य मिल तो जाता है पर वह सैंचो पंजा को संतुष्ट नहीं कर पाता। कहने का अर्थ है कि वास्तविकता के अनुकरण के बदले अगर वास्तविकता ही मिल जाए तो क्या बुरा है? बुराई इसमें है कि हमें वह वास्तविकता स्वीकार्य नहीं हो पाती, क्योंकि वह बहुधा उसी रूप में नहीं होती जिस रूप में हमने चाहा था।

भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में अनुकरण और अनुकीर्तन के अंतर का उल्लेख है। जहाँ अनुकरण वास्तविकता की नकल जैसी है, वहीं अनुकीर्तन वास्तविकता को समझ कर फिर से कहना है।

उसके अलावा नाट्यशास्त्र में नृत्त, नृत्य और नाट्य के अन्तर की विवेचना है। नाट्य को मोटे तौर पर नृत्य, गीत और वाद्य का समूह समझा जाता है। हालांकि नाट्यशास्त्र में नाटक की उत्पत्ति के विषय में कथा है

कि जिसमें इन्द्र ब्रह्मा से कहते हैं कि वह क्रीड़ा के लिए कुछ ऐसा चाहते हैं जो दृश्य और श्रव्य हो। यही क्रीड़ायोग्य दृश्य-श्रव्य वस्तु ही नाट्य है। नाट्य शब्द नट् धातु से बना है, जिसे नृत्त,नृत्य और नाट्य बनते हैं।

- नृत्त - नृत्त का अर्थ अंगों को संचालन, जिसे हम आम तौर पर बालीवुड फ़िल्मों में दर्शाये गये नाच में देखते हैं। बहुधा इनमें कोई विशेष अर्थ नहीं होता है।
- नृत्य - वहीं शास्त्रीय नृत्यों में विभिन्न मुद्राओं से कुछ अर्थ संप्रेषित किए जाते हैं। आपने देखा होगा कि भरतनाट्यम् में नर्तकी हाथों से फूल, राजा और तरह-तरह के अर्थों को अभिनय के माध्यम से बताती है।
- नाट्य - नट के द्वारा प्रस्तुत अभिनय के प्रभाव से प्रत्यक्ष के समान प्रतीत होने वाला, एकाग्र मन की निश्चलता के कारण अनुभव किए जाने वाला और नाटक एवं काव्यविशेष से प्रकाशित 'एकघन' अर्थ 'नाट्य' कहा जाता है। नाट्य में अर्थ को रस से संप्रेषित किया जाता है, जिसमें सभी तरह की कलाएँ अंतर्निहित हो जाती हैं।

हम यहाँ रस की विवेचना पर विस्तार से नहीं जाएँगे। हालाँकि यह ध्यान देने योग्य है कि वीभत्स, करुण, भयानक व रौद्र रस जैसे लौकिक रूप से 'अप्रिय अवधारणाएँ' भी रस के रूप में भारतीय शास्त्र में प्रतिष्ठित हैं। इस तरह केवल प्रिय ही सौन्दर्य का विषय न हो कर, लौकिक अप्रिय भी कला के अलौकिक संसार में सौन्दर्य का विषय है।

फिलहाल, भारतीय शास्त्रीय विचारों के कई सम्प्रदाय काव्य और कला में अंतर करते हैं। छठी सदी के संस्कृत के कवि दण्डी ने चौंसठ कलाओं का उल्लेख किया है। नौवीं सदी के गुर्जर प्रतिहार शासकों के राजकवि, राजशेखर ने अपनी पुस्तक 'काव्यमीमांसा' में काव्य को विद्या कहा है। वहीं कला को उपविद्या कहा है, जिसे उन्होंने काव्य से भिन्न वस्तु माना है। उपविद्या मानने से कला विज्ञान से अधिक सम्बन्धित हो जाती है। इस तरह कला की रूप-रेखा किसी निश्चित सिद्धान्त तक पहुँचा देती हैं। वास्तुनिर्माण, मूर्तिकला और चित्रकला शास्त्रीय दृष्टि से शिल्प माने जाते हैं।

आचार्य गोविन्द चन्द्र पाण्डे अपनी पुस्तक 'सौन्दर्य-दर्शन-विमर्श' में सौन्दर्य को एक विलक्षण अर्थ बताते हुए उससे आनंद के अनुभव की उपलब्धि के तीन स्रोतों की चर्चा करते हैं: - पहला - कलाएँ (संगीत, चित्र आदि), दूसरा - काव्य और तीसरा - प्राकृतिक दृश्य।

उल्लेखनीय है कि बुद्धि का व्यापार निश्चयन है और कृत्रिम बुद्धि यानी आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस भी अधिक से अधिक निश्चयन का काम ही कर सकती है। इसलिए आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस से कला जैसे

कि चित्र, मूर्तिकला, सङ्गीत, वाद्य आदि सुगमता से बनाए जा रहे हैं और बनाए जा सकेंगे।

भारतीय काव्यशास्त्र के अंतर्गत पारम्परिक साहित्य समालोचना निम्न आठ संप्रदायों में निरूपित है: 1. रस 2. ध्वनि 3. औचित्य 4. रीति 5. वक्रोक्ति 6. गुण 7. दोष और 8. अलंकार।

यह स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी कि काव्य में हम अनुकीर्तन सहज रूप से पाते हैं। हमारा मूलभूत प्रश्न यह है कि कविता में हम अर्थ ढूँढे या ना ढूँढें? अगर हम काव्य और कला दोनों को सौन्दर्य के साधन के अर्थ में लें तथा इस बात पर जोर दें कि जिस तरह 'नृत्त' (मामूली अंग संचालन) में कोईविशेष अर्थ अभिप्रेत नहीं है, किन्तु यह देखने वाले को अच्छा लगता है उसी तरह गुरुदेव टैगौर का विचार इस तरह समझा रहा है कि कविता में कोई अर्थ नहीं है। यह केवल अच्छा लग रहा है– यह दृष्टि हमारी विवेचना का विषय है।

नृत्त की विवेचना पर हम पाते हैं कि नृत्त भी अंग संचालन के लय और आवृत्तिपर निर्भर है। वह किसी लौकिक कारण से सुख-दुख की अभिव्यक्ति है, हालाँकि नृत्य की तरह उसमें विशेष अर्थ का निगमन नहीं होता जैसे कि युवराज का राज्याभिषेक या पंछी की उड़ान आदि। किन्तु नृत्त केवल अंग संचालन के आंतरिक लय और आवृत्ति से क्यों रुचिकर है? यह विचारणीय है।

हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक कला या 'मॉर्डन आर्ट' में कई उदाहरण अर्थक्रम में व्यवधान डालते हैं। इसका अर्थ यह लें कि विशिष्ट 'मार्डन आर्ट' में अर्थ का व्यवधान ही अर्थ है, तब भी समस्या है। समस्या कला या काव्य के प्रयोजन की परिभाषा या स्वयं उनके स्वरूप को ले कर है। मूलभूत प्रश्न यह उठता है कि क्या कला सम्प्रेषणीय है या नहीं? क्या इसमें कुछ कहा जा रहा है या नहीं? अगर कुछ कहा नहीं जा रहा तो वह शारीरिक विकार की तरह है। कविता में अगर वह कहा जा रहा है तो क्या वह शब्दों का समूह है, जैसे कि 'गबड़ लबड़ तैतरा फुलान'। अब कहेंगे नहीं-नहीं, अर्थवान् शब्दों का समूह। सहज प्रश्न है कि अर्थ क्या होता है? इस सम्बन्ध में एक प्रश्न उठता है कि सम्बोधन करना अर्थवान है या नहीं? जैसे 'हे राम', 'ऐ नीरज' आदि सम्बोधन किसी अर्थ को सम्प्रेषित नहीं करते, किन्तु यह दो के बीच सम्बन्ध का प्रबोधन करते हैं या कहें तो जगाते हैं। किन्तु क्या किसी को जगाना, अर्थहीन है?

हम देख सकते हैं कि 'है राम नहीं उबलती घोड़ा नदी भी बादल बेसुरी चप्पल'जैसे अर्थवान् शब्द समूह कोई अर्थ नहीं प्रस्तुत करते हैं, क्योंकि यह योजना व्याकरण सम्मत वाक्य नहीं बनाती। जरा नॉम चॉमस्की द्वारा दिए उदाहरणपर विचार करें, जिसमें वह कहते हैं कि अर्थवान शब्दों का व्याकरण सम्मत संयोजन भी वाक्य में अर्थ नहीं पैदा कर सकता जैसे कि – रंगरहित हरित स्वप्न उग्रता से सोते हैं (Colorless green ideas sleep furiously)।

यह स्पष्ट कर देना उचित होगा कि हमारे प्रतिपक्षी की मूल आपत्ति दो तरह की प्रतीत होती है। पहली यह कि कविता या कलाकृति में अर्थ नहीं होता है इसलिए अर्थ ढूँढना बेमानी है। दूसरा यह कि कोई भी परिभाषा सीमित करती है, इस तरह का

परिसीमन कुछ न कुछ अवश्य छोड़ देता है, जिसके कारण परिभाषा देना ही अपूर्ण उपक्रम है और वह वास्तविकता को पूरी तरह नहीं प्रकट करता। हम अभी अर्थ वाले पहलू पर गौर करते हैं।

शब्दों की संहिता से अर्थ का निगमित होना, वाक्य की अभिधा के लिए आवश्यक है। किन्तु आनन्दवर्धन के ध्वनि सिद्धान्त से शब्द की तीन शक्तियों को हम विचारें– अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना- तब हम पाएँगे कि कविता में जो शब्द संहिता आती है वह अभिधा, लक्षणा और व्यञ्जना से संचालित होती है किन्तु निरर्थक नहीं है। हमारा कहना है कि यदि कविता निरर्थक है तो वह काव्य नहीं है।

उदाहरण के लिए हम कहते हैं 'जूही चावला चाँद है', और इस रूपक को हम इस तरह समझते हैं कि जूही चावला चाँद जैसी है। श्रोता इस के अर्थ की अधिक विवेचना अपनी चेतना में करे तो वह यह समझेगा कि जूही चावला का मुख चाँद जैसा कान्तिमान और प्रिय है। निश्चय ही कवि की कारयित्री प्रतिभा के साथ-साथ निर्मल श्रोता की भावयित्री प्रतिभा ही अर्थ का उन्नयन करती है।

किन्तु कई ऐसी कविताएँ हैं, जहाँ व्यञ्जनाएँ काम आती है। जैसे कि हमने कहा चार बज गए, इसका अर्थ कोई यह लगा सकता है कि दफ्तर से छुट्टी होने वाली है, कोई यह लगाएगा कि बच्चे स्कूल से आने वाले हैं या फिर कोई रेलगाड़ी जो तीन बज कर पचास मिनट पर आने वाली थी अभी तक नहीं आयी। आशय यह है किवक्तव्य की पृष्ठभूमि और कहने की मंशा, दोनों ही स्पष्ट नहीं है तथा वह श्रोता पर समझने के लिए छोड़ दी गयी हैं।

अभिनवगुप्त ने आनन्दवर्धन की 'ध्वन्यालोक' की टीका 'ध्वान्यालोक-लोचन' में कहा है कि व्यञ्जना शब्दों के अनन्त अर्थों का अनुसंधान है। व्यञ्जना शक्तिमें अर्थ आवश्यक रूप से साझा करने योग्य नहीं है, जिस तरह अभिधा शक्ति आवश्यक रूप से 'लोक-ग्राह्य' और साझा करने योग्य है। जिस तरह व्यञ्जना की कई सम्भाव्यता ऐसी हैं किवहाँ अर्थ सम्प्रेषित तो है किन्तु सुस्पष्ट नहीं है, उसी तरह कुछ मित्रों का कहना है कि कविता का आस्वाद निर्विकल्प अनुभूति की ओर इंगित करता है, वहाँ सविकल्प होने की आवश्यकता नहीं। उनका यह भी कहना है कि कुल मिला कर तथाकथित गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर की बात भी इसी वाद की ओर इशारा करती है।

निर्विकल्प और सविकल्प शब्दों के विषय में थोड़ा समझ लेते हैं। विकल्प का अर्थ है कल्पना का प्रस्फुटित होना। जैसे आपने मन में शेर के बारे में सोचा या घोड़े के बारे में। उसका निश्चित विचार आपके मन में उदित होता है। जैसे पूछने पर आप बता देंगे कि शेर के चार पैर होते हैं, गरदन पर अयाल होता है, पैने दाँत होते हें आदि, आदि। सविकल्प का अर्थ है कल्पना का निश्चयन। कविता के अर्थ का सविकल्पक होना का मतलब यह है कि उसे अन्य शब्दों से समझ में व्यवस्थित कर लेना। क्योंकि यहाँ ज्ञान का कार्य चेतना में अवधारणा का व्यवस्थापन है। मानसिक विचार जैसे कि लज्जा, क्रोध, स्नेह आदि भी सविकल्पक ही हैं, भले ही वह शेर के बिम्ब की तरह मूर्त न हों।

फिर निर्विकल्पक विचार क्या होता है?
इसको समझने के लिए हमें बौद्ध प्रमाणशास्त्र की ओर चलना होगा। बौद्ध चिन्तन के केन्द्र में

'प्रतीत्यसमुत्पाद' है। प्रतीत्यसमुत्पाद भारतीय शास्त्रीय दर्शन के मौलिक प्रत्यय "कारणकार्यवाद" के विद्रोह में एक वाद है। कारणकार्यवाद वस्तुगत या कहें तो जड़ पदार्थों से उत्पत्ति से सम्बन्धित हैं, जिसमें मिट्टी को घड़ा का कारण, बीज को वृक्ष का कारण, सूत को कपड़े का कारण मानते हैं, वहीं घड़ा, वृक्ष और कपड़ा कार्य माने जाते हैं। वहीं प्रतीत्यसमुत्पाद का सिद्धांत कहता है कि कोई भी घटना केवल दूसरी घटनाओं के कारण ही एक जटिल कारण-परिणाम के जाल में विद्यमान होती है। इसका उदाहरण ऐसा है कि जैसे मेज को थपथपाना और उससे आवाज़ निकलना। प्रतीत्यसमुत्पाद के अनुसार मेज थपथपाना, आवाज़ निकलने का कारण नहीं है। यह बहुत से अन्य कारणों के समवेत व्यवहार में कारण सदृश समझ में आता है। इसी सिद्धान्त के फलस्वरूप बौद्ध चिन्तन अनित्य, अनात्म और दु:ख को अस्तित्व की तीन मौलिक अवधारणा मानता है। बौद्धों के अनुसार चूँकि हर कुछ अनित्य है, इसलिए जानने वाला (प्रमाता) भी अनित्य है। फिर किसी भी देखने वाले को प्रत्यक्ष का ज्ञान कैसे होगा? अपने विचारों की संगति में बौद्ध ज्ञान के दो प्रमाण मानते हैं – १. प्रत्यक्ष और २. अनुमान। बौद्धों का कहना है कि जब हम पहली बार पेड़ देखते हैं तो हमारी दृष्टिपटल पर कुछ संवेदना होती है, यही प्रत्यक्ष है जो निर्विकल्प है। फिर बुद्धि से यह निगमित होता है कि हम जो देख रहे हैं वह पेड़ है। यह अनुमान से सविकल्प ज्ञान बनता है। कुछ दार्शनिक सम्प्रदायों में सत् मीमांसा में वस्तु के ज्ञान के तीन स्तर – वस्तु प्रमाण, वस्तु व्यवहार और वस्तु लक्षणबोध –माने जाते हैं। जिसे हम क्रमश: निर्विकल्प ज्ञान, सविकल्प ज्ञान और वस्तुप्रत्यय से समझते हैं। आशय यह है कि वस्तु प्रमाण को निर्विकल्प ज्ञान से समझा जाता है कि फलाना वस्तु है, उसकी संवेदना मात्र।

इसके उत्तरपक्ष में काश्मीर शैव दर्शन की अपनी प्रमाण चिन्तन योजना है, जहाँ तीन तरह के प्रमाण माने गए हैं: - १. प्रत्यक्ष २. अनुमान तथा३. आगम (शब्द)। काश्मीर शैव दर्शन प्रत्यक्ष प्रमाण के भेद में इन्द्रिय प्रत्यक्ष (जिसके विषय हैं- रूप, शब्द, स्पर्श, रस और गंध) , मानस प्रत्यक्ष (जिसका विषय मानसिक स्थिति जैसे लज्जा, क्रोध, विस्मय आदि हैं) और योगिप्रत्यक्ष की अवधारणा रखता है।

काश्मीर शैवदर्शन में इन्द्रिय प्रत्यक्ष की अवधारणा द्विदलीय है, जहाँ पहली बार पेड़ देखना निर्विकल्प है और बुद्धि से उसकी पुष्टि सविकल्प मानी जाती है। बुद्धि द्वारा पुष्टि यहाँ अनुमान के अंतर्गत नहीं आती। यहाँ प्रत्यक्ष का विषय 'एक' है। शैव दर्शन के मत में मनुष्य 'एक' की अवधारणा में पेड़ देखता है, या फिर 'पेड़ की शाखा' देखता है या संगीत सुनता है या फिर उस संगीत में 'तबले की थाप' सुनता है।

काश्मीर शैवदर्शन भर्तृहरि के सिद्धान्त के अनुसार वाणी के चार स्वरूप को मानती है:- १. परा २. पश्यन्ती ३. मध्यमा और ४. वैखरी। आचार्य अभिनवगुप्त का कहना है कि पश्यन्ती निर्विकल्प है। काश्मीर शैवदर्शन में निर्विकल्पता और सविकल्पता के प्रत्यय सापेक्षिक और गतिशील हैं। संवर्तन और विवर्तन, संवरण और अपावरण के द्वारा यह कहा जाता है कि हर पूर्वावस्था में परवर्ती अवस्था की अपेक्षा प्रमातृभाव (जाननेवाला भाव) संवृत और प्रमेयभाव संवर्तित है और हर परवर्ती अवस्था में

प्रमातृभाव अपावृत और प्रमेयभाव विवर्तित है। अत: हर परवर्ती अवस्था अधिक फैली होने के कारण विकल्पात्मकता को धारण करती हुयी अपनी अपेक्षा से पूर्वावस्था का ग्रहण निर्विकल्पक रूप से कराती है। सरल शब्दों में ज्ञानात्मक अवधारणा में हर पूर्ववर्ती निर्विकल्प है और हर परवर्ती सविकल्प।

इसको अच्छे से समझते हैं। मान लीजिए आपकी आँखों पर पट्टी बाँध के एक कमरे में ले जाया गया। वहाँ पट्टी खोलने के बाद आपसे पूछ गया क्या दिख रहा है। आपकी धुँधली आँखें धीरे-धीरे खुलीं और आपने कहा कुछ दिख रहा है। फिर दृष्टि और स्पष्ट हुयी तब आपने कहा कि घड़ा है। और पूछने पर बताया कि पीतल का घड़ा है। अधिक पूछने पर आपने कहा कि उस घड़े पर फूल-पत्तियों की नक्काशी बनी हुयी है। यहाँ आपके ज्ञान का विषय एक 'घड़ा' होते हुए भी अपनी विवेचना में सविकल्पक होता गया। स्थूल रूप से हमनिर्विकल्पता को हम संवेदना या क्षणिक अस्पष्ट अनुभूति (अंग्रेजी में - सेंसेशन) से समझ सकते हैं।

नृत्त,नृत्य और नाट्य में भी हम इस तरह अर्थ की स्फुटता और अपावरण को देखते हैं, जो कि उत्तरोत्तर सविकल्पक है।

दिल्ली के जयपुर हाऊस में 'नेशनल गैलरी ऑफ मॉडर्न आर्ट' मेंक्यूरेटर नेइसी समस्या से जुड़ा एक दृष्टांत ऐसा दिया कि कि आपने आम खाया है और उसका स्वाद पूछने जाने पर आप क्या कहेंगे? अधिक से अधिक आप यही कह सकते हैं कि मीठा लगा। फिर पूछा जाए कि कैसा मीठा? आप गुड़ जैसा मीठा या लीची जैसा मीठा नहीं कह सकते। ध्यातव्य है कि यहाँ आम के स्वाद की अनुभूति निर्विकल्प नहीं है, क्योंकि 'मिठास' है, यह तो कहा ही जा रहा है। यहाँ समस्या केवल उस अनुभूति के संचारण की है, जहाँ आप केवल आम खिला कर ही दूसरे को आम का या आम की प्रजाति विशेष के स्वाद का या आम की विशिष्ट प्रजाति के फल की अवस्था (कच्चा, पक्का या बहुत अधिक पका) के स्वाद के बारे में अपनी अनुभव से अवगत करा सकते हैं। यह दृष्टांत लौकिक जगत के इन्द्रियजनित ज्ञान के अनुभव के अर्थ में है। लेकिन कलागत सौन्दर्य अनुभव और प्राकृतिक सौन्दर्य अनुभव में कुछ तो अन्तर है न! क्यावह अन्तर अर्थ सम्प्रेषण और आत्मानुभव से भिन्न है? क्या यह अन्तर कला या काव्य की परिभाषा की परिधि से बाहर है? यदि हम मान भी लें कि काव्य की अन्तिम परिभाषा नहीं होती, पर कुछ तो विशेषता है जिससे वह काव्य या कला समझी जा रही है।

यहाँ पर एक सम्बन्धित दार्शनिक प्रश्न है कि जो मीठा हमें लग रहा है, क्या वही मीठा दूसरे को भी लग रहा है। जिसे हम लाल रंग कहते हैं क्या दूसरा भी उसे लाल ही देखता है? आशय यह है कि हो सकता है जो हमें लाल दिखता हो, दूसरे को हमेशा हरा ही दिखता हो और उसका उल्टा कि जो हमें हरा दिखता हो, दूसरे को हमेशा लाल दिखता हो। इस तरह पूरी दुनिया वैसी की वैसी है, लेकिन हमारी मनोदशा संवेद्य-गुण इसकी निश्चित तौर पर नहीं बता सकते कि हमारी अनुभूति और जिसे हम सार्वभौमिक अनुभूति की संज्ञा देते हैं वह एक ही है। इस दार्शनिक समस्या को अंग्रेजी में क्वालिया(qualia)कहते हैं। बहरहाल प्रश्न को ही हम निरुद्धेश्य समझते हैं, क्योंकि व्यवहार में या हमारी समझ में यह कोई भेद उत्पन्न नहीं करती।

लेकिन हमें यह भी समझना होगा कि शब्द-व्यापार हमारी विभिन्न अनुभूतियों का परिसीमन और तद्पश्चात संप्रेषण हेतुवाहक ही है। जब हम नदी कहते हैं या बादल कहते हैं, तब उसका बिम्ब हमारी पूर्व अनुभूतियों से निर्मित होता है, जो कि प्रेक्षक की प्रतिभा का क्षेत्र है। हमारी पाँच ज्ञानेन्द्रियों में केवल चक्षु और कर्ण ही सौन्दर्य की अवधारणा हेतु हैं, क्योंकि 'दृश्य' और 'श्रव्य' ही सौन्दर्य का विषय है। स्पर्श, गंध और स्वाद – इन तीनों में इन्द्रियों का बाह्य पदार्थों से स्थूल और सूक्ष्म संयोजन होता है, वहीं रूप और ध्वनि में इन्द्रिय सन्निकर्ष अति सूक्ष्म (तंरगों के तरंग दैर्ध्य के स्तर) पर होता है। अति सूक्ष्मता के कारण इनका 'अनुकीर्तन'सम्भव है, वहीं स्थूल और सूक्ष्म सन्निकर्ष हेतु वास्तविकता केवल उसी रूप में ही परोसी जा सकती है।

अब आते हैं काव्य की अवधारणा को ले कर। हम वाणी-व्यापार को इस तरह समझते हैं कि वह वक्ता में परा (चेतना की संवेदना का स्तर) से निकल करपश्यन्ती (विवक्षा की स्थिति) से उतर कर मध्यमा (अस्फुट मानसिक विचार) और फिर वैखरी (उच्चारित वाक्य आदि) में बिखर जाती है, उसी तरह वह श्रोता में वैखरी से मध्यमा, फिर मध्यमा से पश्यन्ती में समाहित होते हुए परा में विश्रान्त होती है। इसी तरह काव्य की प्रक्रिया पर विचार करते हैं। यदि हम कविता को पढ़ रहे हैं या सुन रहे हैं, तब वह बौद्ध दृष्टि से इन्द्रिय प्रत्यक्ष से निर्विकल्प रूप में हम तक पहुँचती है। हालाँकि कला या काव्य का संसार अलौकिक (पारलौकिक नहीं, इस लोक से भिन्न के अर्थ में) है, किन्तु यह प्रक्रिया लौकिक है। निर्विकल्प लिखित या उच्चारित शब्द संहिता को हम बुद्धि से निगमित करते हैं। शब्द की शक्ति – अभिधा (उपमा), लक्षणा (रूपक आदि), व्यञ्जना (वक्रोक्ति, कटाक्ष आदि) से हम उस अर्थ का मध्यमा वाक् में उन्नयन करते हैं। निश्चय ही यह आनन्द सविकल्पक है, क्योंकि न तो शब्द निरर्थक हैं न ही शब्द संहिता। अन्यथा वह उपरोक्त परिभाषा से काव्य ही नहीं। यहाँ सविकल्पता का स्वरूप बिम्ब योजना है, जो मन में स्फुटित होती है। वरना किसी तमिल न समझने वाले के सामने तमिल कविता पढ़ना हो, सुन कर श्रोता यही कहेगा कि कुछ बोला जा रहा है जो समझ नहीं आता।

किन्तु प्रश्न उठेगा कि मध्यमा के उपरान्त चेतना में काव्य की अनुभूति पश्यन्ती में ही तो विश्रान्त होगी, जो कि हमारे अनुसार निर्विकल्पक है। निश्चय ही इस बात से सहमति है कि काव्य की अनुभूति निर्विकल्प हो जाएगी, लेकिन उत्तम काव्य की। वह भी इन अर्थों में कि कविता की स्मृति रह जाएगी कि वह अच्छी कविता थी। न तो तत्काल उसके शब्द याद रहेंगे, इन उस पर तात्क्षणिक मनन हो रहा होगा।
जब हम काव्य आलोचना के ज्ञानात्मक प्रतिमान की बात करते हैं तो एक विचित्र दार्शनिक भँवर में फँसते हैं। ज्ञान का साधारण अर्थ लौकिक अनुभव जगत के सत्य और असत्य की कोटि को तय करने से जुड़ा है, जिसमें जानने वाले को प्रमाता और शुद्ध ज्ञान को प्रमा कहते हैं। काव्य जगत का लोक मानवीय संवेदना के बहुआयामी स्तर को प्रस्तुत करता है, जहाँ के ज्ञानात्मक प्रतिमान की कोटि बदल जाती है यदि उसके लिए भी हम ज्ञान शब्द का प्रयोग करें तो। ऐसा इसलिएक्योंकि काव्य जगत में वाक्य 'समय भिक्षुक है'– रूपकों का व्यापार हैं जो शब्द की लक्षणा शक्ति से प्रेरित हैं। काव्य जगत में ज्ञान की कोटि लौकिक अनुभव विषय - जैसे 'देवदत्त मोटा

है' - की तरह 'सत्य' व 'असत्य' की कोटि में नहीं आती।

काश्मीर शैव दर्शन में यह मानते हैं कि परमप्रमाता के अतिरिक्त सब कुछ ज्ञान का विषय है यानी सभी कुछ ज्ञेय है।काश्मीर शिवाद्वयवादमें ज्ञान का अर्थ चार तरह से लिया जाता है– १. प्रमाता का स्वरूप (प्रमातृत्व व कर्तृत्व का अपोद्धृत रूप) २. शक्ति (ज्ञान-स्मृति-अपोहन) ३. बुद्धिवृत्ति (प्रमाण, संशय आदि) या बोध और ४. अनुभव या प्रत्यक्ष। लेख की सीमा के कारण यहाँ अधिक विस्तार में नहीं जाना श्रेयस्कर होगा। कहना इतना है कि हम संशय, विकल्प, अनुभव – सभी कुछ जानते हैं और उसकी विवेचना हमारा अभीष्ट है, इसके लिए हमें अपनी सीमाओं का विस्तार करना मात्र है।यह विचारणीय है कि व्यञ्जना शक्ति से क्या काव्य का स्वरूप पहेली जैसा बन जाता है। ज्ञान के बुद्धिवृत्ति के अर्थ में देखे तो क्या कविता समझ में आ जाने के प्रक्रिया क्या तुक्का मारने जैसी हो जानी चाहिए? प्रश्न उठता है कि आप काव्य और कला की कुछ परिभाषा मानते हैं या नहीं? क्या काव्य ओर कलाकृति में अर्थ के अनुसंधान का प्रश्न है या अभिव्यक्ति को समझने का प्रयत्न है?यदि प्रतिपक्षी काव्य, कला या इसी तरह सम्बन्धित किसी भी परिभाषा को स्वीकार करने से मना कर देते हैं, फिर भी कुछ लक्षण तो मानेंगे ही। नहीं तो हम कविता करते-करते कभी विज्ञान और कभी भूगोल की बात करने लगेंगे। ऐसा तो उन्हें भी स्वीकार्य नहीं होगा। यह हम भले ही मान सकते कि काव्य या कला की परिभाषा अन्तिम नहीं हो सकती, किन्तु यह बोध का विषय अवश्य है, इसे अस्वीकार करना असंगत होगा।

शास्त्रीय विवेचना में रस व्यापार की कोटि दो प्रमुख यौक्तिक सम्बन्ध - कार्यकारण भाव, ज्ञाता-ज्ञेय भाव से भिन्न होती है, इसलिए अलौकिक है। इसको अधिक स्पष्टता से समझते हैं। लौकिक जगत में जड़ वस्तुओं में कारणकार्य भाव (कॉज एण्ड एफेक्ट) से सम्बन्ध निगमित होता है। ज्ञानात्मक सम्बन्ध ज्ञाता और ज्ञेय के सम्बन्ध को बताता है। जहाँ पहले सम्बन्ध में कारण के बाद कार्य निगमित होता है, उससे पहले नहीं, वहीं दूसरे सम्बन्ध में ज्ञान के पूर्व या पश्चात ज्ञेय की स्थिति में परिवर्तन नहीं होता। वहीं रस व्यापार या सौन्दर्यात्मक व्यापार कलाकृति या काव्य के बिना उपपन्न नहीं (ज्ञानात्मक व्यापार से विपरीत), साथ ही वह दोहरायी भी जा सकती है जिससे रस का फलन हो (कारणकार्य भाव से विपरीत – इसलिए कि इस कोटि में काव्य या कलाकृति यदि कारण हैं तो रस या आनन्द उसी प्रकार काउत्पन्न फल नहीं हैं, क्योंकि कारण कार्य में परिणत नहीं होता)। इसलिए कहा जाता है कि रस की उत्पत्ति नहीं, 'निष्पत्ति' होती है। इसलिए कहा जा सकता है कि काव्य आनन्द के निष्पत्ति की कोटि बोधात्मक है, किन्तु विशिष्ट है।

सम्भवतया प्रतिपक्षियों का यह कहना हो सकता है कि कला में जिस अर्थ के प्रेषित किया जा रहा है, वह शब्दों से पूरी तरह निरूपित नहीं हो पा रहा है। यहाँ 'नेशनल गैलरी ऑफ मार्डन आर्ट' के क्यूरेटर का तर्क सही है कि अगर कलाकृति को शब्दों से ही पुनर्स्थापित कर दें तो कलाकृति की क्या आवश्यकता? साथ ही उसकी विवेचना के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि हम जिस अर्थ को शब्दों से नहीं कह पा रहे हैं, वही किसी तरह आपको अनुभूति के योग्य बना देना चाहते हैं। लेकिन शब्दों

की विफलता, या शब्द संहिता के समायोजन की विफलता निर्विकल्पता नहीं है और साथ ही अर्थहीनता भी नहीं। अधिक से अधिक यही कहा जा सकता है कि उस अर्थ को समझाने के लिए शाब्दिक उपकरण उनके पास मौजूद नहीं हैं। लेकिन किसी विशिष्ट कला या काव्य में किसी तरह के शाब्दिक उपकरण की असंभाव्यता का दावा करना कलाकृति और आलोचना (= आँखें बढ़ा कर देखना) के लिए आत्मघाती है, कम से कम काव्य में निश्चित ही, जहाँ शब्द-व्यापार ही उसका मूल स्वरूप है। काव्य और कला का विभाजन माध्यम की विभिन्नता से ही उत्पन्न है और समझा जा सकता है। हम यह तो मानते ही हैं कि संगीत शब्दमात्र नहीं है, तभी तो संगीत है। उसी तरह मूर्ति शब्द का व्यापार नहीं है, बल्कि रूप के सृजन-आस्वादन का व्यापार है।

अर्थ की बहुलता पर एक महत्त्वपूर्ण दृष्टान्त है बिहारी के दोहे का। लोकश्रुति है कि बिहारी ने अपने किसी दोहे के सोलह अर्थ विचारे थे। किसी शास्त्रीय विवेचना में वहाँ पण्डितों ने उसके सत्ताईस अर्थ विचारे, जो बिहारी ने भी नहीं सोचे थे। जो कवि का अभिप्राय भी न हो, क्या वह अर्थ नहीं हो सकता? इसका उत्तर है, हो सकता है। जिस तरह कवि को रचना करने का स्वातन्त्र्य है, उसी तरह श्रोता को अर्थ समझने का स्वातन्त्र्य है। क्योंकि अर्थ केवल कवि के अभिप्राय से नहीं उत्पन्न होता, बल्कि सामाजिक संरचना, परिस्थिति, शब्दों का ऐतिहासिक प्रयोग जैसे नाना प्रकार के कारणों से बनता है। नाट्य में 'एकघन' अर्थ के हृदयंगम होने से रस की उत्पत्ति की बात कही है, जहाँ अभिनय, वाद्य, गीत सब मिल कर 'एक' अर्थ बनाते हैं।

अर्थ की बहुस्तरीयता को ले कर सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू तो ग्रहण करने वाले की योग्यता पर है, उसकी दृष्टि पर निर्भर है। किसी अर्थ को अंशत: ग्रहण किया, किसी पूर्णत: ग्रहण किया। कोई अर्थ की नवीनता पर, कोई उसकी प्रस्तुति पर, कोई मर्म पर मर मिटता है। किसकी दृष्टि किस 'एक' को विचार कर रही है, यह महत्त्वपूर्ण है। अर्थ की बहुलता और उसके आस्वाद पर संस्कृत सुभाषित के दो श्लोक इस तरह हैं: -

कविः करोति काव्यानि स्वादु जानाति पण्डितः ।
सुन्दर्या अपि लावण्यं पतिर्जानाति नो पिता ॥

कवि काव्य की रचना करता है और पण्डित उसका स्वाद लेते हैं। सुन्दरी के लावण्य को पति जानता है उसका पिता नहीं।

कविः करोति पद्यानि लालयत्युत्तमो जनः ।
तरुः प्रसूते पुष्पाणि मरुद्वहति सौरभं ॥

कवि सुन्दर भावपूर्ण कविताओं की रचना करते हैं और उन से श्रेष्ठ तथा काव्यानुरागी व्यक्ति आनन्दित होते हैं / इसी प्रकार वृक्षों मे फूल खिलते हैं और वायु द्वारा उनकी सुगन्ध को प्रसारित करने से सारा वातारण सुगन्धित हो उठता है /

सवाल यह उठता है कि क्या आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस व्यञ्जना शक्ति का उपयोग कर सकता है? तत्त्व-मीमांसीय दृष्टि से प्रत्ययवादी काश्मीर शिवाद्वयवाद में 'चेतना=ज्ञान=वाक्' समीकरण माना गया है। चूँकि ज्ञान चेतना का ही स्वरूप है, इसलिए भारतीय दर्शन में कभी ज्ञान स्वतन्त्र पुरुषार्थ में नहीं गिना जाता, बल्कि वह धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की चतुष्टयी में अनुस्यूत है। इस प्रश्न परअभिनवगुप्त का तर्क होगा कि अचेतन आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस न तो पूरी तरह ज्ञानात्मक हो सकता है, न ही वाक् से संयुक्त। कृत्रिम बुद्धि की वाणी अधिक से अधिक

मध्यमा तक पहुँच सकती है। वह पहुँच कर समाप्त हो जाना उसकी नियति है।

हिन्दी काव्य आलोचना का समसामायिक स्वरूप आत्मनिषेधवादी है। जिसका परिणाम उसके कट्टर जातिवादी और सामंतवादी हो जाने में स्पष्ट है। लेकिन हमें यहाँ जातिवाद और सामंतवाद के स्वरूप को अधिक समझना होगा। जब हम राजनैतिक विचारधारा की प्रतिबद्धता की बात करते हैं, स्त्री, दलित, मुसलमानों और तृतीय लिंग विमर्श की बात करते हैं, उस समय हमारी बुद्धि एक जाति के प्रति ही सजग है। यहाँ जातिवाचक संज्ञा के बिना हमारा काम नहीं चल पा रहा। जिस तरह जन्मजात जाति के प्रति विद्वेष हम देखते हैं और उसे अनुचित मानते हैं, उसी तरह हम आलोचना में भाषायी प्रवृत्ति के साथ जुड़े उन्माद तथा असहमति के प्रति विद्वेष को देखते हैं। सामंतवादी आलोचना का प्रसारण हम काव्य आलोचना के व्यक्तिपरक हो जाने में देखते हैं। फलाना साहब कितना बढ़िया लिखते हैं, अलाना देवी ने क्या स्त्रियों का दुख बताया है, आदि आदि। परिणामत: हम व्यक्ति को पूजने या धिक्कारने लगते हैं। किसी की महत्ता को स्वीकार उसे आराध्य बना देने की पद्धति या अन्य को तिरस्कृत करने की पद्धति ही सामन्तवादी है। हम कई बड़े कवियों की खराब कविताओं का भी आदर होते हुए देखते हैं। इस विडम्बना का कारण यह है कि वह कविताओं का आसूत्रण के लिए व्यक्ति को चुनने को या किसी सामूहिक प्रवृत्ति को चुनने को विवश हैं। ऐसी विवशता इसलिए है क्योंकि हम शब्द शक्ति की विविधता-बहुलता और काव्य की अलौकिकता को अपने पारम्परिक व मूल स्वरूप में देखना पसन्द नहीं करते। अभिधा में लोक जीवन ही यदि काव्य और उसकी आलोचना का प्रतिमान बन गया है तो उसकी उपलब्धि हर पाँच साल में होने वाले चुनाव में सत्ता परिवर्तन से अधिक नहीं है।

शाश्वत प्रतिमान तो यह है कि जो कविता देश, काल को नहीं जीत सकती, वह शक्तिहीन है। अपनी-अपनी पसन्द है, किसी को नटों के करतब पसन्द आते हैं किसी को शास्त्रीय नृत्य। अर्थ ग्राह्यता के इस तरह केभिन्न स्तर होने से कविता और उसकी आलोचना बहुस्तरीय संवाद से बच निकलना चाहती है। इस कारण यही है कि हमारी समकालीन काव्य आलोचना के उपकरण, प्रतिमान और विषय लौकिक अनुभव जगत तक सीमित हो चले हैं। यह खेदजनक है।

***

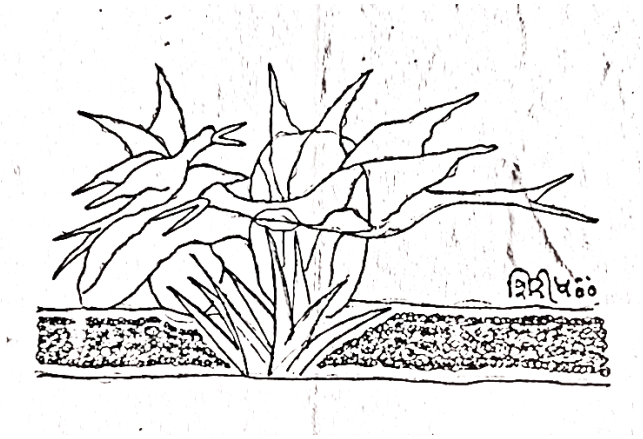

वर्तमान समय की विद्रूपता और विसंगतियों का रेखांकन

दीक्षा मेहरा

खेमकरण 'सोमन' के कविता संग्रह **'नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर'** में संकलित सभी कविताएँ भोगे हुए जीवन-यर्थाथ की सहज अभिव्यक्तियां हैं। जीवन से लगाव और मानव मन के सरल निश्छल भावों की अभिव्यक्ति के साथ लगातार चिंतन करता हुआ कवि-मन कविता में एक संवाद क़ायम करता है, जो समकालीन जीवन की अस्थिरता और बेचैनी को व्यक्त करता हुआ समाज की कई समस्याओं को उठाता है। इस संग्रह में संसार के सुंदर रूप के साथ-साथ समाज में व्याप्त विषमताएं और उनसे उत्पन्न विभिन्न विसंगतियों का चित्रण भी समान रूप से अंकित होता चला गया है। काव्य-चेतना की दृष्टि से इन कविताओं में व्यवस्था के प्रति आक्रोश और क्षोभ के भाव भी दिखाई देते हैं। अपने रचना-विन्यास में कवि ने यथार्थ के अनेक लक्षित प्रसंगों को कथ्य के रूप में उठाया भी है। सोमन की कविताएं अपने दौर के अनुभूत सत्यों से रची-बसी हैं- जिसमें जीवन के विविध रंग हैं, तमाम अंतर्विरोधों के साथ जटिल खुरदरा यथार्थ है, कुरूप और भयावह परिस्थितियां हैं, लगातार हो रहे नैतिक मूल्यों का ह्रास और आदर्शों का खोखलापन भी है। इस संग्रह में समाजिक संघर्षों के साथ ही कवि का आत्मसंघर्ष भी है। इनकी कविताओं में एक ओर सामाजिक प्रतिबद्धता है, तो दूरी ओर एक दिन सब कुछ ठीक हो जाने की उम्मीद भी है। आज के छल-कपट के माहौल में भी कृतज्ञता में विश्वास सोमन के सकारात्मक व्यक्तित्व का परिचायक है। इस संग्रह की प्रथम कविता **'कृतज्ञता की तख्ती लेकर'** जिसकी पंक्तियां हैं-

नदी बही जा रही है कृतज्ञता से
न छल है मन में-
न कपट, न चमचागिरी
उसका सरल-सुन्दर रूप देखकर,
सैकड़ों जीव-जन्तु भी हैं कृतज्ञ
उसके प्रति

सोमन की काव्य-संवेदना व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों तरह की है। मानवीय धरातल पर कवि ने जाति-धर्म और वर्ग के ताने-बाने में आदमी के अमानवीय उत्पीड़न-शोषण और दमन के अनेक प्रसंगों को उजागर किया है और वह हर जगह संघर्षरत मनुष्य के साथ प्रतिबद्धता से खड़ा दिखाई देता है-

उस दिन
मजदूर निहार रहे थे अपनी पत्नियों को.....
छोटी-जवान होती अपनी लड़कियों को.....
दिवंगत माताओं-पिताओं की फोटो....
.....
उस दिन
औद्योगिक इलाके में आठ मंजिला जर्जर इमारत गिरी
उस दिन गिर गए
सैकड़ों मजदूर भी लाश बनकर।

सोमन की कविताओं में बार-बार आए ईमान के प्रसंग एक ओर बचपन में पढ़ी **'पंचपरमेश्वर'** कहानी की याद दिलाते हैं तो दूसरी ओर मुक्तिबोध के **'वह कैद कर लाया गया ईमान'** के लागातार संघर्ष को बयां

करते दिखाई देते हैं। कवि इस संग्रह में दिल्ली शहर को अपनी कल्पनाओं के जरिए चित्रित करते हुए उसके सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक विविधताओं को उजागर करता हुआ उत्तराखण्ड से दिल्ली की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दूरी को पर्याय के माध्यम से अभिव्यक्त करता है। **'नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर'** की ये दूरी सोमन के बाजपुर के निकटवर्ती गाँव से दिल्ली की है जिसे वाहनों के माध्यम से तो पाटा जा सकता है, लेकिन ये दूरी दूर-दराज़ क्षेत्रों से दिल्ली की भी है। इन क्षेत्रों में तमाम संघर्षों के बीच जीवन-यापन करने वाले लोगों की बुनियादी सुविधाओं से यह दूरी आम जनता की सरकार से भी दूरी है। जिसे किसी तरह पाटना संभव नहीं दिखाई देता है।

पाँव को मिट्टी में धँसाएँ इन पत्थरों ने
कभी किया नहीं अपने आँकड़ों से हेर-फेर
कभी डोला नहीं इनका ईमान पढ़े-लिखे आदमी की तरह
हालांकि बदलना होता तो बदल भी जाते-
बुजुर्ग माता-पिता को त्यागकर कहीं दूर शहरों में
अमेरिका-ऑस्ट्रेलिया,
न्यूजीलैंड
या कनाडा आदि देशों में बस चुके बेटों की तरह.....
लाला-बनिये, व्यापारियों के हिसाब की तरह....
या चुनाव के समय भारतीय वोटरों की मन:स्थिति की तरह
मात्र दारू-मुर्गा मीट-नमकीन पैसों के लिए

जीवन की तमाम जटिलताओं, भागदौड़, शहरीकरण, वैचारिक-मतभेद आदि के कारण लोग अपने माता-पिता को बोझ समझने लगे हैं और उन्हें वृद्धाश्रमों में रखने लगे हैं, ये आज के समाज का एक कड़वा सच है। संग्रह में कई कविताओं के माध्यम से कवि ने वृद्धों की समस्या को मार्मिक अभिव्यक्ति दी है-

कहते हैं बेटे- इधर हम खुश हैं।
उधर वृद्धाश्रम में पिताजी
पिताजी बहुत हँसते रहते हैं
मिलते हैं हम सब जब-जब भी

इसी संग्रह की एक अन्य कविता **'रहने दो उनको भी इसी तरह'** में वे लिखते हैं-

हर समय जरूरत नहीं होती
फिर भी रखते हैं लोग अपने घरों में गंगाजल
रखते हैं चिट्ठियाँ
रखते हैं कुर्सियाँ रखते हैं पैसे
रखते हैं लोग बहुत सारा सामान
जैसे- नए-पुराने कपड़े और किताबें
रहने दो उनको भी इसी तरह
इस घर में
उनको मत भेजो वृद्धाश्रम।

कुछ और भी ऐसे सच हैं, जो हमें सहज स्वीकार्य नहीं हैं, पर हमें उन्हें स्वीकारना होगा। लोग अक्सर अपने संघर्षों और समस्याओं के बीच फंसे हुए होते हैं और उन्हें समाधान नहीं मिलता। सोमन अपनी कविताओं में संघर्ष के विभिन्न रूपों को चित्रित करके मानव और समाज की संघर्ष चेतना को कविता में प्रस्तुत करते हैं-

जब भी नया

वर्ष लिखना
पहला शब्द
संघर्ष लिखना

एक अन्य कविता **'खून से अब नमक निकल रहा है'** की पंक्तियां है-

संघर्ष से
जिन्दगी निकलती है
जिंदगी से अब संघर्ष निकल रहा है।

सोमन की कविताएं समकालीन समाज की समस्याओं, राजनीतिक विडम्बनाओं के प्रति तीव्र आक्रोश को प्रस्तुत करती हुई उनके सामान्य हो जाने की उम्मीद भी करती है-

उस दिन एक आदमी बैठा हुआ था बस में
उसके पास पैसे नहीं थे
बस कंडक्टर ने कहा- पैसे नहीं है तो क्या हुआ
हम तो हैं, बैठिए जहां तक जाना है
उस दिन एक पड़ोसी ने दूसरे पड़ोसी से बरसों बाद कहा
कि आज रात सपरिवार आइएगा मेरे घर पर
आज रात वहीं खाना है
सासू मां
फिलहाल खेल रही थी अपनी पोती के साथ
उस दिन भिरारी वाली की बेटी पहली बार दिखी रोटी के साथ
उस दिन झोपड़ी के गरीब बच्चे गा रहे थे हाथों में डालकर हाथ
उस दिन गाबा लाला नहीं बोले-गन्दे पुरबिये नीच जात!

अपने समय और समाज की विसंगतियों की पहचान इस संग्रह की तमाम कविताओं का एक ख़ास गुण है यथार्थ की बेहद खुरदुरी जमीन पर विचरता कवि का बेचैन मन नाना प्रकार के झूठ फ़रेब से सँवरती, बदलती दुनिया में आम आदमी के दु:ख और उसके जीवन की कठिनाइयों को अभिव्यक्त करता है। संग्रह में **'कुछ लोग इन्तज़ार करते हैं', 'बुरे सपने', 'तब से उदास है राम की माँ', 'कभी सुध नहीं ली उन्होंने', 'तब लानत है मुझ पर', 'फिर आग उठी और धुआं'** कई ऐसी कविताएँ हैं-

जब छीने जा रहे थे-
छीनने वाले नरभक्षियों के द्वारा
और जब कोई न था किसी का सहारा
पानी के नाम

जाति के नाम पर भी बांट दिया गया था समाज
उसी समय खुल गया एक राज
नरभक्षी एक तरफ-
गांव के लोग एकजुट होकर एक तरफ
गांव के लोगों की तरफ पानी का कुआं
फिर आग उठी और धुआं।

'ख़तरनाक नहीं है यह' शीर्षक कविता एक बार फिर कवि 'पाश' की कविता **'सबसे ख़तरनाक होता है हमारे सपनों का मर जाना'** की याद दिलाती है खेमकरण सोमन **'ख़तरनाक यह नहीं'** में वे विचारों से ख़ाली हो जाने को सबसे ख़तरनाक बताते हैं। संग्रह की एक अन्य कविता **'जिनकी कोई आवाज नहीं'** में वे एक बार फिर मनुष्यता को बचाए रखने की बात करते दिखाई देते हैं-

सबके लिए भरपूर सम्मान रखना
जो जोड़ सके
अपने अंदर ऐसा एक इंसान रखना

सोमन का यह पहला कविता-संग्रह है। अभी बहुत संभावनाएं हैं, इनकी कविताओं में समकालीन परिस्थितियों, व्यवस्थाओं, राजनीतिक विडंबनाओं के प्रति तीव्र आक्रोश तो है, किन्तु संग्रह में संकलित कविताएँ पर्याप्त रूपकों, बिम्बों का निर्माण करती हुई नहीं दिखाई देती। कविता-संग्रह का शीर्षक **'नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर'** तो एक रूपक बनाता है, किन्तु संग्रह की कविताओं में कवि व्यक्ति-समाज, राजनीतिक-सामाजिक यथार्थ, धर्म-जाति, समकालीन समय की कड़वी सच्चाईयों के साथ-साथ ईमानदारी, मनुष्यता, कृतज्ञता, आदि तमाम विषयों पर सपाटबयानी में मुखर हुआ है। भाव एवं संवेदना के स्तर पर कविताएँ अच्छी हैं, भावों और विचारों में संतुलन है।

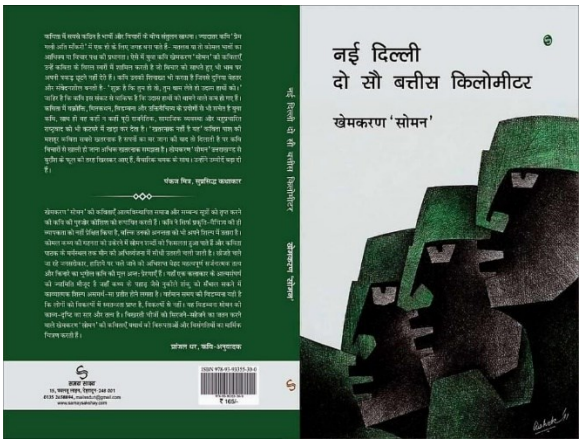

नई दिल्ली दो सौ बत्तीस किलोमीटर
खेमकरण 'सोमन'
समय साक्ष्य, देहरादून

जागर- लोक की स्मृतियाँ और स्मृतियों का लोक

अंजलि नैलवाल

जब मनुष्य घर के पास नहीं होता तो कोई न कोई कारण देकर घर उसे अपने पास बुला लेता है और उससे कहता है कि तुम फल खाने के लिए चाहे कितने ही ऊंचे चढ़ जाओ पर पानी डालने जड़ के पास आना ही पड़ेगा। मनुष्य कई-कई घर बना लेता है, परन्तु जड़ उसके पैतृक घर में ही रहती है। हमें भी हमारी जड़ ने अपने पास बुलाया 'जागर' का कारण देकर।

जागर उत्तराखण्ड में कुल देवी-देवताओं को पूजने की कई सौ साल पुरानी एक परम्परा है। प्रत्येक परिवार की अपनी अलग जागर होती है पर विधि-विधान और कुछ देवता एक समान ही होते हैं। जागर का सीधा-सा अर्थ है जगाना, देवताओं को भी और मनुष्यों को भी। जागर की विधि, नियम और प्रावधान देखकर मैं कभी-कभी सोचती हूं कि अन्य जितनी भी प्रचलित पूजाएं हैं जागर उन सबसे इतनी अलग कैसे है? बाकी पूजाएं दिन में होती हैं, जागर रात को होती है। सामान्यतया पूजा से पहले अन्न नहीं खाया जाता, जागर खाने-पीने और घर-बाहर का सारा काम निपटाने के बाद होती है। पूजा में पूजन होता है मूर्तियों का, जागर में पूजन होता है मनुष्यों का। सबसे मज़ेदार बात ये कि दूसरी पूजाओं में मनुष्य ईश्वर से अपने कुशल की केवल कामना और प्रार्थना ही कर पाता है, परंतु जागर में उसे उसकी समस्या और समस्या का हल तुरंत ही प्राप्त हो जाता है। जाहिर-सी बात है कि ये सब बातें एक मिथक सरीखी लगती हैं,लेकिन उत्तराखण्ड के लोगों के लिए यह एक जरिया है अपनी समस्याओं और उनका हल जानने का। बात उपायों और समस्याओं के सही-ग़लत या मिथक मात्र होने की नहीं है। बात है संतुष्टि की, जो इन लोगों को सारी दुनिया खोजने के बाद जागर से मिलती है। जागर जब शुरू की गई होगी तो उस वक्त के कमेरे लोगों ने दैनिक कार्यों को ज्यादा महत्ता दी होगी और इसी लिए जागर का समय रात को निर्धारित किया होगा। जागर का अन्य पूजा से अलग होने का एक कारण यह है कि यह कोई पूजा नहीं है, बल्कि एक पारंपरिक कचहरी है, जहां न्याय किया जाता है।

ये देवता भी तो हमारे जैसे मनुष्य ही थे, जिन्होंने समाज में कितने ही अन्याय सहने के बाद न्याय को समझा और लोगों की मदद करने की ठानी। जगह-जगह अपनी कचहरियां लगाई और लोगों को न्याय दिलाया और यहीं-कहीं अपने लोगों के बीच हमेशा के लिए रह जाना पसंद किया। जागर में इन्हीं सब

कहानियों का वर्णन किया जाता है, जिन्हें सुनकर ये देवता परिवार के किसी चुने हुए व्यक्ति के शरीर में प्रवेश लेते हैं और फिर न्याय करते हैं। ये चुने हुए व्यक्ति स्त्री और पुरुष दोनों हो सकते हैं, देवताओं ने इसमें भेद नहीं रखा।

जागर का आह्वान हुआ और मैं भी निकल पड़ी अपनी जड़ की ओर, जहां आज लगभग पांच-छह साल बाद जागर का आयोजन होने जा रहा था। खचाखच भरती हुई गाड़ियों को देखकर पता चल रहा था कि मई और जून के महीने हर कोई अपने देवताओं को याद करता हुआ घर लौट रहा है। मैं लगभग एक साल बाद वापस लौट रही थी। और एक साल में ही कितना कुछ बदला हुआ-सा लग रहा था। बदलाव का आभास तब होता है जब आप किसी चीज को कुछ देर के लिए छोड़ देते हैं बिना उसे देखे। हर पल कुछ ना कुछ बदलता रहता है और इसका पता हमें तब चलता है, जब हम उस स्थान पर लौटते हैं, जहां हमने अपने जीवन का एक बड़ा हिस्सा बिताया हो। गुज़रे हुए साल का पता तब तक नहीं चला, जब तक मैं लौटी नहीं उस स्थान पर। पुरानी दुकानों का नई दुकानों के बीच खो जाना, रास्ते भर नए मकानों का दिखना, जाने-पहचाने चेहरों का बदला हुआ रूप देखना बता रहा था कि एक नहीं, कई साल गुज़र चुके हैं। हर एक क्षण में कुछ बदलता है, बाहर ही नहीं, भीतर भी। मेरे भीतर भी बहुत कुछ बदला। घर पहुंची, सब से गले लगकर मिलना हुआ और ठंडी-ठंडी हवाओं के साथ रात बीती। तीसरे दिन सुबह से ही गांव में पूजा-पाठ का सिलसिला शुरू हो गया। पहले भूमिया देवता को भोग लगाया गया जोकि हमेशा से ही 'पुए' और आटे की 'सै' बनाकर किया जाता है, स्वाद शब्दों में नहीं बताया जा सकता। दिन के बाद से और लोगों ने भी आना शुरू किया, शाम तक गांव की जनसंख्या दुगनी हो चुकी थी। हमने पुराने घर में, जहां देवताओं का मंदिर है, सबके बैठने की व्यवस्था की। सभी तरह ज़रूरी सामान को लाकर रख दिया गया। शाम को संध्या-आरती के बाद सारे परिवार ने एक साथ बैठकर खाना खाया और उसके बाद जागर का सिलसिला शुरू हुआ।

जागर दो तरह की होती है - एक भूतों वाली, जिसमें अदृश्य बाधाओं से ग्रसित लोगों का निवारण किया जाता है, यही जागर प्रचलित है और लोगों ने एक तरह का विचार भी बना लिया है कि जागर होती ही इसके लिए है। दूसरी जागर होती है देवों वाली, जिसमें केवल देवताओं के दर्शन और उनकी कृपा

दृष्टि प्राप्त करने के लिए उनका आह्वान किया जाता है। हमारी जागर यही वाली थी। हमारी जागर, मात्र जागर नहीं, देवोत्सव था, जिसमें केवल प्रसन्नता और कुशलता का संदेश था।

जागरों की कुछ धुंधली यादें हैं अब भी, बहुत पुरानी, जिनमें केवल भय ही भय है और बचने के लिए मां की गोद में नींद, पर अब सुप्ति का स्थान चेतना ने ले लिया था। भय, उत्साह में बदल गया था। उदासीनता, जिज्ञासा में परिवर्तित हो चुकी थी। बैठने की जगह सबसे आखिर से सरक-कर सबसे आगे आ गई थी।

बिछाई गई दरियों के ऊपर एक ओर से कम्बल के आसन लगाए गए थे। आसन की पूजा-अर्चना के बाद 'जगरिये' और 'डंगरिये' अपने-अपने स्थानों पर बैठ गए। जो जगाए, वो जगरिया और जो डगर दिखाए, वो डंगरिया।। हर भटके हुए व्यक्ति को अपने जीवन में एक डंगरिए की जरूरत होती है, जो उसकी हर समस्या और सवाल का जवाब दे सके। बीच में रखी हुई थाली में धीरे-धीरे जमा होते चावल बता रहे थे कि यहां भी सबके पास सवाल हैं, सबके पास दुःख हैं, सबके पास दुविधाएं हैं, जिनसे वे न जाने कब से बाहर निकलना चाहते होंगे। आज उन्हें उनकी डगर मिलने वाली थी। सभी अपना स्थान लेकर बैठ गए। जागर शुरू हुई। पहले कुछ मिनट केवल 'कांसे की थाली' और 'हुड़ुके' की ध्वनि गूंजी। शायद वह वाद्यों के साथ शुरुआती कसरत होती होगी या फिर अपने-अपने में रमे 'स्योंकार-स्योन्याई' (पुरुष-स्त्री) का ध्यान खींचने का संकेत होगा। जो भी हो, सब शांत हो चुके थे। अब जगरिए ने बोल गाने शुरू किए। संगीतबद्ध ताल में, स्थानीय भाषा में वे बोल उन देवी-देवताओं की कथाएं थीं, जिन्हें आज जगाना था। करीब आधा पहर बीत गया, पर केवल जागर का गान ही रहा, देवी जागी नहीं। हो सकता है इतने समय से उनकी सुध न लेने के कारण वे योग निद्रा में चली गई हों। यदि रोज़ का नियम न बना हो तो मनुष्य भी कुछ समय तक जगाने पर भी नहीं जाग पाता। यहां भी कुछ ऐसा ही हुआ। ख़ैर, कुछ उपाय करके देवी जागृत हुईं, जो नहीं आ पाए, उनके प्रति नाराज़ हुईं और अन्य सभी को आशीर्वाद देकर, अपनी प्रसन्नता जताकर नृत्य करने लगीं। यह नृत्य कुछ विलक्षण होता है, आम लोगों के जैसा नहीं। एक-एक करके सभी देवताओं को जागृत किया गया, सबने अपनी-अपनी प्रसन्नता जताई। कुछ पुरानी बातों से भी पर्दा हटाया गया, जिन्हें हमारी पीढ़ी के लोग नहीं जानते। अंत में समय आया न्याय का। एक के बाद एक व्यक्ति अपने-अपने प्रश्न लेकर आते रहे। उन्हें उनके प्रश्नों के उत्तर दिए गए। जो दुःख लेकर आए थे उनके दुःख का इलाज़ उन्हें बताया गया। जिन्होंने कुछ नहीं कहा, उनकी बात भी देवता ने कही। कुछों को मनचाहे आशीर्वाद दिए गए। जिनको समस्या का ज्ञान नहीं था, उनको उनकी समस्या से अवगत कराया गया। जो जैसी अरदास लेकर आया था, उसको वैसा न्याय दिया गया। मेरे लिए यह सब देखना कई कारणों से बहुत रोचक था। बिना कागज़-पत्तरों और तारीखों के, सरकारी तंत्र से चार गुनी रफ़्तार का यह न्याय

देश के अदालतों के लिए प्रेरणा का काम कर सकता है। हर एक न्याय के साथ यह पता चल रहा था कि मनुष्यों के भीतर कितना दुःख है। मनुष्य, मनुष्य से कितना ग्रसित है। यदि यह दुःख इन मिथक परंपराओं से कुछ कम होता है, तो उसमें व्यक्ति की आस्था बनना स्वाभाविक है। न्याय करते हुए देवता की भाषा बहुत अलग होती है, न जाने कितने ही स्थानीय भाषा के सुंदर शब्द मैंने जागर में सुने, जो आम बोलचाल में प्रयोग नहीं किए जाते। हर भाषा में ऐसा ही हुआ है। आभास होता है कि समय के साथ भाषा फलती-फूलती नहीं, बल्कि संकुचित होती जाती है। इन सबसे ऊपर, मेरे बचपन के डर का जिज्ञासा में बदल जाना ही अपने आप में एक रोचक बात थी।

अपने लोगों को अपने लोगों का न्याय करते हुए देखना कैसा होता है? यह प्रश्न वहाँ मौजूद लोगों से पूछना संभव न हो सका। अपनी समझ से कहूँ तो न्याय करते हुए, मनुष्य के लिए, कुछ देवता बोलता है, कुछ आदमी। कुछ देवता जानता है, कुछ उनके परिजन, लेकिन मनुष्य केवल देवता के आगे झुकता है, न ही किसी आदमी के और न ही किसी परिजन के आगे। अपनी सम्पूर्ण अहंता कहीं दबाकर, वो झुकता है अपनी विवशता के आगे। वो झुकता है अपनी इच्छाओं के आगे, वो झुकता है अपने विश्वास के आगे और ये झुकाव ही उसे उसकी परंपराओं, आस्थाओं और बुनियादों के पास लेकर जाता है। ये झुकाव ही बिखरी हुई शाखाओं को एक पेड़ से बांधे रखता है। करीब चार घंटे के देव-दर्शन के बाद आरती, प्रसाद और चाय के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ। देवता ने अपने लोगों से एक साल बाद फिर से बुलाए और जगाए जाने का वचन लिया। देवता आना चाहते हैं, जगाया जाना चाहते हैं, पर वे तब तक नहीं जाग सकते जब तक मनुष्य नहीं जागता।

मेरी कामना है कि मनुष्य जागें, उनके ऐसे ही मनुष्यवत सरल हृदय देवता जागें। वे जागें कि हमारा समाज हर तरह कट्टरता से दूर एक सजल हृदय समाज बन सके। यह जागरण समवेत हो, पूरे विश्व-समाज के लिए

***

हिन्दी साहित्य और न्यू मीडिया

सपना भट्ट से मेधा नैलवाल का साक्षात्कार

मेधा नैलवाल - हिंदी साहित्य और न्यू मीडिया के संबंध को आप किस तरह देखती हैं ?

सपना भट्ट- यह न्यू मीडिया पद अपने आप ओल्ड मीडिया या पुराना मीडिया पद का निर्माण करता दिखता है।

अपनी सीमित समझ से जो समझ पा रही हूं वह यह की औद्योगिक समाज की अभिव्यक्ति के माध्यम के रूप में जन्म लेने वाले अखबार, पत्रिकाएं, रेडियो और टेलीविजन जैसे माध्यम अब इस माइक्रोप्रोसेसर या चिप केंद्रित समाज में पुराने पड़ गए हैं। जो नया मीडिया है वह सोशल मीडिया, ब्लॉगिंग,वेब पत्रिकाएं, पॉडकास्ट, यूट्यूब और तमाम वेब केंद्रित सूचना संग्रहण और प्रसारण का उपक्रम है।

इस नई तकनीक को साहित्य के और विशेषकर हिंदी साहित्य के परिप्रेक्ष्य में देखना इसलिए और महत्वपूर्ण और जटिल है क्योंकि हमारा यह समय एक ढंग से बीच का समय है जिसे ट्रांजिशन पीरियड भी कह सकते हैं। हमारे समय में साहित्य से संबंधित पुरानी मीडिया के प्रतिमान और उनसे जुड़े प्रतिष्ठान उतने ही सक्रिय हैं जितने वेब आधारित प्लेटफार्म।

थोड़ा ख़तरा उठा कर कहा जा सकता है कि भविष्य में पुरानी मीडिया का लोप हो जाएगा, वह संग्रहालय की वस्तु हो जाएगी और मीडिया का काम पूरी तरह इस न्यू मीडिया के कंधों पर होगा।

अभी इस न्यू मीडिया ने हिंदी साहित्य की रचनात्मकता, प्रकाशन के अवसरों, प्रकाशन की गति और प्रकाशन पर आई प्रतिक्रियाओं को अभूतपूर्व ढंग से तेज कर दिया है।

पुरानी मीडिया से तुलना करके देखें तो पहले एक कविता लिखे जाने, संपादक को पोस्ट किए जाने और प्रकाशित किए जाने के दौरान महीनों का समय लेती थी। वह प्रकाशन भी तब सम्भव हो पाता था जब यह संपादक की रुचि के अनुरूप हो, पत्रिका में कविता के लिए जगह हो और इस बीच लेखक का धैर्य ना चुक गया हो।

संपादक की समझ के साथ साथ पत्रिका के मालिकों की राजनैतिक और संवेदनात्मक समझ भी पत्रिकाओं में रचनाओंम के चयन को प्रभावित करती रही है ।

ऐसे में यह न्यू मीडिया साहित्य में शक्ति संरचनाओं के समाप्त होने, प्रकाशन के लोकतांत्रिकीकरण और रचनाओं पर त्वरित प्रतिक्रियाओं के आने की नई और ताज़ा हवा की तरह आया है। अब लेखक को

संपादक या प्रकाशक की बाट नहीं जोहनी। वह स्वयं अपना प्रकाशक और संपादक है। लिखने के अगले ही पल वह उसे फेसबुक,इंस्टाग्राम या ट्विटर आदि पर प्रकाशित करता है, उस पर आई प्रतिक्रियाओं से रूबरू होता है और नए रचना कर्म की ओर बढ़ जाता है।

यही कारण है की रचनाशीलता में बढ़ोतरी हुई है और किताबें पहले के किसी भी समय की तुलना में बहुत अधिक प्रकाशित हो रही हैं। इस तरह देखें तो न्यू मीडिया ने ओल्ड मीडिया में भी जान फूंकी है। सांस्कृतिक आयोजकों और पत्रिकाओं के संपादकों को भी इसी न्यू मीडिया के दायरे में रचनाकारों को खोजते, आमंत्रित करते और प्रकाशित करते देखा जा रहा है।

मेरी समझ में इसने रचनाकार को स्वतंत्र किया है, नए प्रयोगों और नई विषय वस्तुओं की ओर सोचने के लिए जगह दी है और उसकी असफलता के भय को कम किया है।

इसके दोषों को देखने के उपक्रम में यह कहा जा सकता है कि रचनाओं की गुणवत्ता को लेकर कोई संपादन या आलोचनात्मक दृष्टि मौजूद नहीं है,एक अराजकता सी दीख सकती है इसलिए संभव है कि न्यू मीडिया पर मौजूद रचनाओं में से गुणवत्तापूर्ण रचनाएं खोजना थोड़ा मुश्किल हो।

वेब के आने के बाद से साहित्येतर कारणों से छोटे-छोटे शक्ति केंद्र बन रहे हैं जो रचना से अधिक व्यक्तिगत संपर्क और प्रशंसा के लेनदेन के लघु व्यापार पर केंद्रित हैं।

मेधा नैलवाल - सोशल मीडिया पर लेखकों की उपस्थिति से पाठकों की संख्या पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

सपना भट्ट -इससे पाठकों की संख्या अभूतपूर्व ढंग से बढ़ी है, रचनाओं पर आने वाली प्रतिक्रियाएं बढ़ी हैं और बहुत कम समय में किसी भी रचना को पहले से हजारों गुना अधिक पाठक पढ़ रहे हैं।

मेधा नैलवाल - प्रचार एवं बिक्री के नए मंच न्यू मीडिया ने तैयार किए हैं। इस पर आपके क्या अनुभव हैं ?

सपना भट्ट -यह सच है कि प्रचार एवं बिक्री के नए मंच न्यू मीडिया ने तैयार किए हैं। प्रकाशक बेहतर जानते होंगे की किताबों की प्रतियां पहले की तुलना में किस तेजी से बिक रही हैं। किसी भी किताब के दूसरे और तीसरे संस्करण की सूचना अब अधिक मिला करती ह। अपनी किताब के प्रचार और बिक्री के विषय में बोलना मुझे ठीक नहीं लग रहा लेकिन अपने साथी रचनाकारों की रचनाओं को तेजी से फैलते, बिकते और प्रशंसित होते देखती हूं और इसमें कोई संशय नहीं है कि यह सब न्यू मीडिया के कारण हुआ है। सोशल मीडिया पर लाइव के द्वारा, शेयरिंग के द्वारा और स्पॉन्सर्ड पोस्ट बनाकर पुस्तक ही नहीं किसी भी वस्तु की बिक्री के आंकड़ों को बढ़ाया जा सकता है और जब तक यह अश्लील ना जान पड़े मुझे इसमें कोई बुराई भी नहीं दिखती।

मेधा नैलवाल - लेखक, प्रकाशक और पाठक किताब की इस आधारभूत संरचना में न्यू मीडिया ने नया क्या जोड़ा है ?

सपना भट्ट - न्यू मीडिया ने लेखक,प्रकाशक, पाठक की आधारभूत संरचना को बहुत गहराई से प्रभावित किया है। इन तीनों के बीच परस्पर संवाद और व्यापार बढ़ा है। पारंपरिक संकोच और प्रतीक्षा जैसे मनोभावों का क्षरण हुआ है, बेबाकी बढ़ी है और व्यापार की शर्तों को लेकर एक स्पष्टता बनी दिखती है।

लेखक निसंकोच पाठक से संवाद कर रहा है, उसे अपनी किताब खरीदने के लिए प्रेरित कर रहा है। वह प्रकाशकीय प्रचार तंत्र में बिना किसी हिचक के अपना सक्रिय योगदान दे रहा है। एक ढंग से किताब के अधिक से अधिक बिकने के प्रति उसने एक अतिरिक्त जिम्मेदारी ले ली है। प्रकाशक और संपादक अब अपने रहस्यमय कमरों से बाहर खुले मंच पर लेखक और किताब की प्रशस्ति करते दिखाई पड़ते हैं।इस तरह के आयोजन बढ़ते जा रहे हैं।

चाहे या ना चाहे पाठक इस प्रचार तंत्र की जद में है। किताबें खरीदने का उसका विवेक और उसका बजट इन आयोजनों और उपक्रमों से प्रभावित हो रहा है। पाठकीय अभिरुचि को भी व्यवसायिक प्रयासों से बदला जा पा रहा है।

मेधा नैलवाल - सोशल मीडिया पर आपकी उपस्थिति का आपकी रचनाशीलता पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

सपना भट्ट -व्यक्तिगत तौर पर कहूं तो कोई खास नहीं। मैं सोशल मीडिया पर बहुत सीमित समय के लिए उपस्थित होती हूं। सोशल मीडिया के बहुत कम सदस्यों से संवाद होता है लेकिन इस बात की आश्वस्ति हमेशा होती है की रचना लिखने पर प्रकाशन की एक बड़ी और उदार जगह मेरे लिए मौजूद है। यह नहीं कह सकती कि प्रकाशन की इस उपलब्ध जगह ने मेरी रचनाशीलता को बढ़ाया है या घटाया है।

मेधा नैलवाल - हिन्दी की ई-मैगज़ींस और महत्वपूर्ण ब्लॉग्स पर प्रकाशन के अपने अनुभव साझा करने की कृपा करें।

सपना भट्ट - हिंदी की लगभग सभी महत्वपूर्ण ई-मैग्ज़ीन्स और महत्वपूर्ण ब्लॉग्स ने मेरी रचनाओं को उदारता पूर्वक और बहुतायत में प्रकाशित किया है। उनकी संपादकीय दृष्टि को लेकर मेरे मन में आदर का भाव है।कह सकती हूं कि जो भी नगण्य सा मेरा लेखकीय व्यक्तित्व बन पाया है उसमें इन ब्लॉग्स और ई-पत्रिकाओं का महत्वपूर्ण योगदान है। इन जगहों से मुझे निरंतर प्रोत्साहन, नए पाठक और प्रकाशन का संतोष मिला है।

***